"अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"

(जनपद झाँसी के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की
समाजशास्त्र विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

2008

शोध निर्देशक :
डॉ. एच. एन. सिंह
उपाचार्य,
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ (उ.प्र.)

अनुसंधित्सु :
आशीष गौतम
एम.ए. समाजशास्त्र

शोध केन्द्र

डॉ. भीमराव अम्बेदकर समाज विज्ञान संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

"अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"

(जनपद झाँसी के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की समाजशास्त्र विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

2008

शोध निर्देशक-
डॉ. एच.एन. सिंह
उपाचार्य,
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ (उ.प्र.)

अनुसंधित्सु-
आशीष गौतम
एम.ए. समाजशास्त्र

शोध केन्द्र

डॉ. भीमराव अम्बेदकर सामाज विज्ञान संस्थान

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ० एच०एन० सिंह
उपाचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़
(सम्बद्ध : डॉ० बी०आर०ए० विश्वविद्यालय, आगरा)

Mob. : 9412672211
निवास- 59, सरस्वती बिहार,
अलीगढ़ (उ०प्र०)
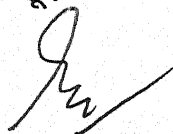
दिनांक : ....

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि अनुसंन्धित्सु ***आशीष गौतम*** द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ***"अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" (जनपद झाँसी के विशेष संदर्भ में)"*** मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के पत्रांक बु०वि०/प्रशा०/शोध /2006/1473-75 दिनांक 14.02.2006 के द्वारा समाजशास्त्र विषय में वे शोध कार्य के लिए पंजीकृत हुआ है।

इन्होंने मेरे निर्देशन में आर्डनेन्स की धारा 7 द्वारा वांछित अवधि दो वर्ष से अधिक अर्थात 200 दिन उपस्थिति रहकर समय तक कार्य किया है तथा इस अवधि में इस शोध केन्द्र में उपस्थित रहा है। यह इनकी मौलिक कृति है। इन्होंने इस शोध के सभी चरणों को अत्यन्त संतोषजनक रूप में परिश्रम पूर्वक सम्पन्न किया है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(डॉ. एच.एन. सिंह)
निर्देशक

<u>घोषणा – पत्र</u>

मैं ***आशीष गौतम*** घोषणा करता हूँ कि समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत ***"अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" (जनपद झाँसी के विशेष संदर्भ में)"*** डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरी स्वयं की मौलिक रचना है। इसके पूर्व ये शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है

अपना यह शोध कार्य मैंने अपने सुयोग्य वरिष्ठ गुरूदेव ***डॉ0 एच.एन. सिंह*** उपाचार्य समाजशास्त्र विभाग, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ के मार्ग दर्शन में किया है।

आशीष गौतम

(आशीष गौतम)

अनुसंधित्सु

शोध प्रतिवेदन के प्रति आभार

समाज मानव की सामूहिक प्रज्ञा का विकसित भौतिक स्वरूप है। समाज एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर सम्बद्ध हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति के स्वार्थ जहाँ एक होते हैं, वहीं उसकी कुछ ऐसी विशे-ताऐं होती हैं जो उसे समाजों से अलग करती हैं। परस्पर की निकटता समाज के सदस्यों को निकट लाती है और उनमें इंसानियत उत्पन्न करती है, उन्हें एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनाती है। वस्तुतः समाज सह अस्तित्व की विकासमान प्रक्रिया है। मैकाइवर के अनुसार समाज रीति और व्यवहारों का, प्रभुत्व एवं पारिवारिक सहायता का, एकाधिक समुदायों और विभागों का और मानव आचार एवं स्वतन्त्रता का क्रम है। वस्तुतः मानव की चेतना का विकास समाज में समाज के ही माध्यम से होता है। इस प्रकार निश्चित ही समाज मात्र व्यक्तियों का समूह भर नहीं है अपितु सामाजिक सम्बन्धों का गहन मान्य गठबन्धन है।

भारतीय समाज का निर्माण विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों, विभिन्न भा-ााओं विविध सांस्कृतिक विशे-ताओं, रीति-रिवाजों, प्रथाओं और परम्पराओं के प्रतिमानों का संगम स्थल है जो एकता में अनेकता और अनेकता में एकता का आदर्श प्रस्तुत करता है संस्कृति मानव समाज की सर्वोत्तम उपलब्धि है। भारतीय संस्कृति में नारी का सदैव से सर्वोच्च्य स्थान रहा है। **'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'** कहकर उसका सदा से सम्मान रहा है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत के रूप में विभिन्न सामाजिक संस्था, परिवार, विवाह, धर्म, जाति तथा शिक्षा आदि ने अनादिकाल से महिलाओं को अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन में योगदान दिया है। इसीलिए नारी और पुरुष के मानव जीवन की गाड़ी के दो पहिए कहा गया है जिसके संचालन में दोनों का बराबर का योगदान होता है। किसी एक के अभाव में जीवन की गाड़ी का संचालन सम्भव नहीं हो सकता।

महिलाओं को समान अधिकार और सामाजिक कार्यों में उनकी भागेदारी से जहाँ उनका अत्मबल बढ़ेगा और वे सामाजिक विकास में और अधिक सहयोग दे सकेंगी वहीं अन्याय; अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए उद्यत हो सकेगीं। वैधानिक प्रावधानों का ज्ञान उन्हें शक्ति प्रदान करेगा। फलतः वे वैधानिक व्यवस्था का समाजहित में उपयोग भी कर सकेंगी।

अनुसूचित जाति की महिलायें यों तो परिवार के पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने में सक्षम हैं। वैधानिक व्यवस्था का ज्ञान उनकी सामाजिक दशा को भी सुदृढ़ करेगा।

इसी उद्देश्य को लेकर अनुसूचित जाति की महिलाओं, की समस्या के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्याय व्यवस्था के प्राविधानों की प्रासंगिकता के अध्ययन जनपद झाँसी के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उसी रूपरेखा का प्रतिफलन है। डॉ. एच.एनं. सिंह जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया है ऐसे ज्ञान निधि, परम आदरणीय, सौम्य स्वाभावी गुरू जी का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। आपसे प्राप्त आत्मीय अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए मेरे पास न तो उचित शब्द समूह और न ही सशक्त लेखनी ....।

आभार श्रृंखला के इस सोपान क्रम में मैं समाजशास्त्र के विद्वान मनीनियों के अन्तर्गत प्रोफे. आई.एस. चौहान पूर्व कुलपति एवं राजदूत (फिजी) बरकतउल्ला वि.वि. भोपाल, प्रोफे. गौतम ज्ञानेन्द्र, बरकतउल्ला वि.वि. भोपाल, प्रोफे. जे.पी. पचौरी, एच.एन. वहुगुणा वि.वि. श्रीनगर, गढ़वाल, प्रोफे. के.के. मिश्रा, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर, प्रोफे. डी.एन. सिंह, एम.जी. काशी विद्यापीठ, वाराणसी, प्रोफे. एस.आर. यादव बनारस हिन्दू वि.वि., वाराणसी, प्रोफे. सी.एस.एस. ठाकुर, रानी दुर्गावती वि.वि., जबलपुर, प्रोफे. एस.एस. शर्मा, चौ. चरणसिंह वि.वि., मेरठ, प्रोफे. एस.एस. भदौरिया, एम.एल.बी. कॉलेज, ग्वालियर, डॉ. एस.एस. गुप्ता, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, जे.एल.एम. कॉलेज, बाँदा के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिन्होंने समय-समय पर शोध के विभिन्न धरातलों पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं का निराकरण करते हुए सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अमूल्य सुझाव देकर मुझे विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान की है।

आभार श्रृंखला के तृतीय सोपान में मैं अपने माता-पिता श्रीमती बिटोला एवं डॉ. बी. डी.एस. गौतम, **समाजशास्त्र विभाग नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद** की भी कम आभारी नहीं हूँ जिन्होंने मुझे हर प्रकार का सहयोग कर अनुसन्धान कार्य में सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में कृतज्ञता ज्ञापित करना उन सभी के लिए जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग किसी भी रूप में किंचित मात्र भी मेरे हिस्से में आया है उन सभी के प्रति शुभकामनाओं/भावनाओं सहित धन्यवाद साथ ही टंकणकर्ता विकास कम्प्यूटर्स भी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने शोध प्रबन्ध को स्वच्छ तथा त्रुटि रहित टंकित किया है।

आशीष गौतम

(आशीष गौतम)

अनुसंन्धित्सु

उत्तर प्रदेश

का मानचित्र

जनपद झाँसी
N
कानपुर को
एरच
बामौर
मोठ
N.H.25
S.H.42
गरौठा
गुरसराय
टहरौली
दिल्ली को
टोड़ी फतेहपुर
बरुआसागर
झाँसी
बंगरा
मऊरानीपुर
बांदा को
कटेरा
बबीना
ललितपुर को
संकेत
रानीपुर

विषय सूची एवं अध्यायीकरण

क्रमशः.......२

क्रमशः.......३

अध्याय - 1

प्रस्तावना:

- भारतीय समाज एवं नारी जीवन का परिदृश्य
- जाति संस्था-सम्प्रत्यय विशेषताएं एवं परिवर्तित संदर्श
- परिवार संस्था- अवधारणा एवं स्वरूप
- विवाह संस्था- अवधारणा, प्रकार, मान्यताएँ
- सम्बन्धित साहित्य का सिंहावलोकन
- परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था का स्वरूप
- विभिन्न सामाजिक विधानों का विवरण
- अध्ययन समस्या का प्रस्तुतीकरण

अध्याय-1

प्रस्तावना-

भारतीय समाज में आधुनिक नारी की स्थिति तथा उससे जुड़े हुए प्रश्नों की चर्चा करने के पूर्व इतिहास के पृष्ठों पर स्त्रियों का किस प्रकार चित्रांकन किया गया है, यह समझना आवश्यक है। सामाजिक जीवन कभी भी देश एवं काल के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री को दर्जा ऊँचा, ऐसी मान्यताओं को यथार्थ की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है। यदि यह स्वीकार कर लें कि प्राचीन युग में स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा उसका स्थान ऊँचा था तो उसकी उच्चता के प्रेरक तत्व कौन-कौन से थे तथा उसका ह्रास कब और कैसे हुआ, यह समझने के लिए इतिहास पर दृष्टिगत अनिवार्य हो जाता है।

भारतीय व्यवस्था के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति एक लम्बे समय से विवाद का विषय रही है। स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित विवाद का कारण यह नहीं है कि हम जैविकीय अथवा मानसिक रूप से उन्हें दोषपूर्ण मानते हैं, बल्कि इसका प्रमुख कारण हमारी पवित्रता सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा ही है। अनेक पश्चिमी विद्वानों ने यहाँ तक मान लिया है कि नारी के कुछ ऐसे जन्मजात दोष है जिनके कारण वह पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती। डॉ. रूबैक का विचार है कि "स्त्रियों में जन्म से ही असंगति और परस्पर विरोध का दोष होता है" जबकि फ्रायड ने यहाँ तक कह दिया है कि "यह स्वीकार करना होगा कि स्त्रियों में न्याय की भावना बहुत कम होती है क्योंकि उनके मस्तिष्क में ईर्ष्या भरी हुई है।"

भारतीय समाज में ऐसी कोई धारणा नहीं पायी जाती। हमारी मौलिक सामाजिक

व्यवस्था में स्त्रियों को सम्पत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है, जिसकी अभिव्यक्ति के रूप में लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती रही है। स्त्री को पुरुष की "अर्द्धांगिनी" के रूप में स्थान दिया गया है ज़िसके बिना किसी कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। यह हमारा दुर्भाग्य है कि वैदिक और उत्तर वैदिक काल के पश्चात् हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थायें रूढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगी और फलस्वरूप स्त्रियों में लज्जा, ममता और स्नेह के गुणों को उनकी दुर्बलता समझकर पुरुषों ने मनमाना शोषण करना आरम्भ कर दिया। ऐसी प्रवृत्तियों को स्मृतिकारों और धर्मशास्त्रकारों का आशीर्वाद प्राप्त होने के कारण स्त्री धीरे-धीरे परतन्त्र, निःसहाय और निर्बल बन गयी। पुरुष ने शक्ति के लाभ और स्त्री के पारिवारिक अधिकार तक छीन लिये। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि मध्यकाल में हिन्दु समाज में स्त्रियों की स्थिति एक दासी से अच्छी नहीं रह गयी। समय व समाज परिवर्तनशील है और हमारे समाज के एक बड़े भाग में स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के व्यापक प्रयत्न किये। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज में आज स्त्रियों को पुनः सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में .जीवन अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। अनेक क्षेत्रों में स्त्रियों ने पुरुषों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया है कि जन्मजात दृष्टि से उनमें कोई क्षमता पुरुषों से कम नहीं है।

भारतीय स्त्री की चर्चा करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि स्त्री की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन उन्नीसवीं सदी के बाद प्रारम्भ हुये। बाह्य दृष्टि से इस परिवर्तन के लिए अंग्रेजी राज्य को उत्तरदायी माना जा सकता है। इस नई राजसत्ता ने कौन-सी ऐसी शक्तियाँ पैदा की, जिन्होंने सदियों से जमी हुई संस्थाओं की नींव हिला दी? साथ ही एक अन्य विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्व समाज में ऐसी कौन-सी संस्थायें थीं, ऐसी कौन-सी जटिलतायें थी, कौन से दबाव तथा नियंत्रण थे जिनके कारण स्त्री के स्थान एवं दर्जे में पिछले तीन-चार हजार वर्षों में कोई

उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो सका? इन सब समस्याओं के समाधान के लिए इतिहास की गहराईयों का अध्ययन करना आवश्यक है। समाज में स्त्रियों की स्थिति की विवेचना के लिए हम विभिन्न कालों में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन कर सकते हैं-

प्राचीन काल में-

प्राचीन काल को हम तीन भागों में जिनमें वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल तथा धर्मशास्त्र युग में स्त्रियों की स्थिति बाँट सकते हैं जिनका विवरण इस प्रकार हैः-

वैदिक समाज में नारी के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था। वैदयुगीन गृह का अस्तित्व नारी के अस्तित्व में निहित माना जाता था। वैदयुगीन नारी समाज में पूज्य मानी जाती थी। वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है, जिसमें नारियों ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था।

वैदिक समाज में यद्यपि कन्या को भी पुत्रवत स्नेह एवं आदर प्राप्त था, तथापि कन्या जन्म के समय पुत्र जन्म के समान संस्कारों का सम्पादन नहीं किया जाता था। शत्रुनाश एवं आर्यों की स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से पुत्र जन्म पर विशेष खुशी मनायी जाती थी।

अथर्ववेद में कहा गया है कि 'नववधु तू जिस घर में जा रही है वहाँ की साम्राज्ञी है, तेरे सास-ससुर, देवर व अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनंदित हों। अथर्ववेद में ही लिख गया है, 'जायापत्ये मधुमती, वांच तदतु शांतिवाम्' अर्थात् बहु घर में आते ही गृहस्थी की बागडोर सम्भाल लें, आते ही घर की साम्राज्ञी बन जायें। इस युग में पति की पूर्णता पत्नी के अस्तित्व में ही निहित मानी जाती थी। पत्नी रूप में नारी निश्चय ही पति की अर्द्धांगिनी होती थी। वेदयुग में पत्नी को पति के मित्र का रूप प्राप्त था। वेदों में प्रयुक्त 'दम्पत्ति' शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि पति एवं पत्नी दोनों मिलकर गृहस्थी का संचालन करते थे।

पति एवं पत्नी के सम्बन्धों में इतनी अधिक समानता, घनिष्ठता एवं माधुर्य के होते हुये भी पितृ प्रधान वैदिक समाज में पति की प्रभुता ही मानी जाती थी। *ए.एस. अल्तेकर के अनुसार-* ''तद्र्युगीन समाज में पत्नी की पति के प्रति अधीनता आदरभाव से पूरित थी। इस अधीनत्व के बावजूद पत्नीयाँ तदयुगीन गृहों का आभूषण मानी जाती थी और पत्नी ही पूरे गृह का संचालन करती थी एवं दास आदि लोगों को उचित कार्यों में प्रवृत्त करती थी।

वेदयुगीन नारी मातृपुरुष देवी के समान पूज्य मानी जाती थी। पत्नी को 'जाया' का अभिधान प्रदान कर हमारे आर्य मनीषियों ने निःसंदेह नारी को गौरवपूर्ण स्थान दिया था जिसके गर्भ में स्वामी स्वयं पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करें, वही 'जाया' है।

वेद-युग में पर्दा प्रथा का पूर्णतः अभाव था। कन्यायें निर्मुक्त होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थी एवं काम-धन्धे भी करती थी। वे अध्यापनादि क्षेत्र भी अपनाती थी। स्त्रियाँ खुली आमसभाओं में भाग लेती थी। वेदयुगीन स्त्रियाँ जनतन्त्रीय सभाओं की शासन सम्बन्धी बहसों में भाग लेती थी, किन्तु उत्तर वैदिक काल में नारी की बाह्य क्षेत्रीय स्वतन्त्रता कुछ कम हो गई थी।

वेदयुगीन नारियाँ, वैदिक वाङ्मय का विधिवत् अध्ययन करती थी एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थी। वैदिक समाज में धर्म के नाम पर स्त्रियों के प्रति दुराचार नहीं किया जाता था।

विवाह संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् कन्यायें अधिक सम्मान की पात्र हो जाती थी। प्रारम्भिक वेदयुग में पत्नी की यज्ञ में सोमगीतों का गान करती थी। पति एवं पत्नी दोनों साथ-साथ पूजा करते थे। यज्ञ हेतु पत्नी पूरी तैयारी करती थी। वह यज्ञ के लिए चावल बनाती थी, पशु को स्नान कराती थी, वेदी का निर्माण करती थी। तदुपरांत पति के दायीं ओर बैठकर पति के सहयोग से विधिवत् यज्ञ सम्पन्न करती थी।

पी.एच. प्रभु[1] ने 'हिन्दु सोशियल ऑर्गनाइजेशन' में लिखा है कि ''जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री-पुरुषों में कोई भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी। वैदिक युग में पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि कुरीतियाँ नहीं थी। यद्यपि वैदिक युग में नारी पावन एवं पवित्र समझी जाती थी, किन्तु 'मासिक धर्म' के समय वह अपवित्र एवं अस्पृश्य मानी जाती थी। उस समय वह गृहस्थी एवं धर्म का कोई कार्य नहीं कर सकती थी, यहाँ तक कि उस स्त्री की दृष्टि एवं आवाज भी त्याजय समझी जाती थी। वेदयुगीन समाज में धारणा थी कि मासिक धर्म के दिनों स्त्रियाँ व्याधिग्रस्त रहती है, अतः पत्नी का स्पर्श भी पति को हानि पहुँच सकता था।

उस सीमित काल के अतिरिक्त वैदिक नारी धार्मिक क्षेत्र में पुरूष के समाज समस्त अधिकारों का उपभोग करती थी। **ए.एस. अल्तेकर**[2] **के अनुसार**- ''नारी धर्म के मार्ग में बाधक नहीं थी। धार्मिक संस्कारों एवं उत्सवों में पत्नी की उपस्थिति एवं सहयोग वांछनीय माना जाता था।

वैदिक युग में पत्नी व्यक्ति सम्पत्ति की भी स्वामिनी होती थी। पत्नी की यह सम्पत्ति उसके वस्त्र, आभूषण एवं धनराशि के रूप में होती थी। पत्नी विवाह के अवसर पर दहेज एवं भेंट में यह सम्पत्ति प्राप्त करती थी। इस सम्पत्ति पर पत्नी का पूर्ण अधिकार होता था। पत्नी इस व्यक्तिगत सम्पत्ति को कभी भी बेच सकती थी या किसी को दे सकती थी। भाई के अभाव में पुत्री पिता की पूरी सम्पत्ति की अधिकारी होती थी।

वेदयुगीन विधवायें यातनामय जीवन नहीं जीतीं थी वरन् वे समस्त सुविधाओं का उपभोग करती थीं। पुनर्विवाहिता विधवा समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थी विधवा स्त्री अधिकांशतः अपने मृत पति के भाई या उसके निकट सम्बन्धी से ही विवाह करती थी। वैसे इन्हें अजनबी व्यक्ति से विवाह करने का भी अधिकार प्राप्त था

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित है कि उर्वशी 'पुरुवा' की कुछ शर्तों सहित विवाह करती है और शर्तों के टूट जाने पर वह पति से सम्बन्ध तोड़ लेती है। निष्कर्षतः वेदयुगीन स्त्रियाँ समस्त अधिकारों की भोक्ता थी एवं उनकी स्थिति उच्च तथा आदरणीय थी। के.एम. कपाड़िया के अनुसार वह घरेलू दिनचर्या की मुख्य केन्द्र थी, वह अपने घर की साम्राज्ञी थी। उस पावन युग में स्त्री सम्बन्धी कुरीतियों का चयन प्रारम्भ नहीं हुआ था। प्राचीन भारतीय इतिहास में वेद युग नारी के उत्थान का पराकाष्ठ काल माना जाता है।

उत्तर वैदिक काल को सामान्यतः ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक माना जाता है। इस युग में पुत्री की अपेक्षा पुत्रागमान अधिक मांगलिक एवं आनन्ददायक माना जाता था फिर भी पुत्री का स्थान सम्मानजनक था। आपस्तम्ब गृह सूत्र से ज्ञात होता है कि यात्रा से लौटने पर पिता पुत्र की भाँति पुत्री को भी मंत्रोच्चारण सहित आशीर्वाद देता था।

स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। स्त्रियों के उपनयन संस्कार का चलन पूर्णतः समाप्त हुआ प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि गृह सूत्रों में स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थी। विवाह संस्कार के समय वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवादक मंत्रों का उच्चारण करते थे। अतः स्त्रियों की शिक्षा युवकों से कम नहीं थी। पाणिनी ने भी 'उपाध्याय' एवं 'आचार्य' स्त्रियों पर प्रकाश डाला है। सूत्राध्ययन से स्पष्ट होता है कि विवाह के समय कन्यायें पूर्णतः वयस्क एवं समागम के योग्य होती थी।

बौधायन[3] के मतानुसार, यदि वयस्क कन्या का पिता तीन वर्ष तक कन्या का पति न खोज सके, तो कन्य को स्वयं पति-वरण करने का अधिकार था। जहाँ तक स्त्रियों के पुनर्विवाह का प्रश्न है, कुछ शर्तों सहित सूत्र-युगीन स्त्रियाँ भी इस सुविधा का उपभोग करती थीं। आदर्श एवं शुभचिंतक पति के जीवित रहते हुए पत्नियों को

यह अधिकार प्राप्त नहीं था। सूत्रकालीन विधवा स्त्री हेय दृष्टि से नहीं देखी जाती थी। इस युग में सती प्रथा का पूर्णाभाव था। विधवा स्त्री पति के शव के साथ शमशान घाट तक जाती थी, परन्तु वहाँ से विधवा का देवर या वृद्ध व्यक्ति या पति का शिष्य उसे शमशान घाट से ले आता था। घर में रहकर विधवा स्त्री संयमित एवं अनुशासित जीवन जीती थी। पति की अबीजता (संतानोपत्ति की अक्षमता), दुश्चरित्रता, उन्माद एवं चारित्रिक पतन के कारण पत्नी पति से सम्बन्ध विच्छेद कर सकती थी। इसके साथ ही पति यदि दीर्घ काल तक परदेश में रह जाये, उस दशा में भी पत्नी सम्बन्ध विच्छेद कर सकती थी।

सूत्र युगीन स्त्रियाँ पर्दे की कुप्रथा से त्रस्त थीं। नव विवाहित स्त्री भी पर्दा नहीं करती थी। इसका प्रमाण हमें आपस्तम्ब गृह सूत्र में प्राप्त होता है कि विवाह के उपरान्त ससुर गृह जाते समय वधु का मुख सभी दर्शक देखते थे।

स्त्री का स्थान समाज में भार्या के रूप में तो प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय था ही परन्तु स्त्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान माता के रूप में पाती थी। पतनोन्मुख पिता को पुत्र बहिष्कृत कर सकता था, परन्तु पतिता माता पुत्र के आदर की पात्र होती थी। अतः सूत्रकाल में स्त्री का स्थान आदर्णीय था। धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतन्त्रता का भोग करती थी। आर्थिक क्षेत्र में वह सीमित अधिकार ही प्राप्त किये हुए थी। सूत्रकारों ने यद्यपि सम्पत्ति पर दम्पत्ति का संयुक्ताधिकार स्वीकार किया है, तथापि धन व्यय करने के प्रश्न पर प्राथमिकता एवं प्रमुखता पति को ही दी थी। पति की अनुपस्थिति में पत्नी अवश्य कुछ धन व्यय कर सकती थी।

महाकाव्य युगीन समाज में नारी का स्थान धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा। सम्पूर्ण महाभारत में कन्या जन्म को अशुभ मानने का मात्र एक ही संकेत मिलता है। यद्यपिइ स तद्‌युगीन समाज में कन्या को लक्ष्मी माना जाता था। कन्या की पवित्रता के कारण ही सिंहासनारोहण या राजतिलक जैसे शुभ कार्यों में कन्या की उपस्थिति

अनिवार्य मानी जाती थी। पुत्री की रक्षा करना पितृ-धर्म माना जाता था। अनाथ कन्याओं की सुरक्षा राजा पितृवत करता था। घर में कन्या का कार्य मुख्यतः अतिथि सत्कार करना होता था। कन्या को पुत्र के समान सभी अधिकार प्राप्त थे। केवल पिता की सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता था। फिर भी पितृ-सम्पत्ति का कुछ अंश वह दहेज के रूप में प्राप्त कर लेती थी। कन्यायें शिक्षा भी प्राप्त करती थीं।

गृह लक्ष्मी के रूप में पत्नी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पुत्र, पौत्र, नौकर-चाकर आदि से सम्पन्न घर पत्नी के अभाव में जंगल समान माना जाता था। कन्या को प्रारम्भ से ही पतिव्रता बनने की शिक्षा दी जाती थी। पत्नी, पति के धार्मिक कार्यों में साथ देती थी। पत्नी, पति के समस्त सुख-दुःख की सहभागिनी मानी जाती थी। पति के प्रति पत्नी का प्रेम निःस्वार्थ एवं मधुर होना आवश्यक माना जाता था। पत्नी का आदर्श रूप महाभारत के अनुशासन पर्व में विस्तृत रूप से वर्णित है। पत्नी घर की शोभा एवं आभूषण मानी जाती थी। परिवार में उसका सम्मान किसी देवी से कम नहीं होता था, परन्तु देवी जैसा सम्मान पाने के लिए पत्नी को पतिव्रता एवं आदर्श गृहणी बनना होता था।

महाभारत कालीन परिवार यद्यपि पितृसत्तात्मक था, तथापि 'वीरप्रसु' एवं जननी होने के कारण माता का स्थान अति आदरणीय माना जाता था। माता अपने शरीर के अंग एवं हृदय के अंश के रूप में सन्तान को जन्म देती है। बालक की पोषक अथवा धात्री होने के कारण ही माता 'अम्बा' एवं शुश्रू' कहलाती थी। सन्तान के पालने के लिए माता पृथ्वी के समान कष्ट सहती है। इसी कारण उसे पृथ्वी से महान माना जाता था।

शिक्षा जगत में माता का स्थान पिता एवं उपाध्याय से उच्च माना जाता था। माता को 'त्रिअतिगुरू' में स्थान प्राप्त था। पुत्र के लिए माता से बढ़कर कोई वेद एवं शास्त्र नहीं माना जाता। गर्भवती स्त्री के प्रति बहुत सतर्कता बरती जाती थी। गर्भवती

स्त्री की सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। गर्भवती स्त्री की हत्या करने वाला व्यक्ति ब्रह्म हत्या का भागी माना जाता था।

विधवा स्त्री निःसंदेह दुःखी प्राणी मानी जाती थी, परन्तु समाज द्वारा उसे तिरस्कृत नहीं किया जाता था। स्त्री वैधव्य जीवन पाकर स्वयं भाग्य को भले ही कोसे, परन्तु समाज उसे सम्मानित स्थान प्रदान करता था। विधवा को अशुभ या पापिनी नहीं माना जाता था। इसका प्रमाण रामायण के इसी प्रसंग में मिलता है कि राजतिलक पर राम को उनकी विधवा माताओं ने ही सजाया था। कुन्ती ने द्रोपदी के विवाह पर आशीष दिया था।

महाकाव्य युगीन समाज में सती प्रथा का चलन नहीं था। राजा दशरथ, बालि एवं रावण आदि सभी की विधवा पत्नियाँ अन्त तक जीवित रहीं।

धर्मशास्त्र काल से हमारा आशय विशेषतः तीसरी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक के समय से है। तीसरी शताब्दी के बाद याज्ञवलक्य संहिता, विष्णु संहिता और पराशर संहिता की रचना हुई जिनमें वेदों के नियमों को पूर्णतया तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था। स्त्रियाँ भी इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनीं।

इस काल में स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी से याचिका के रूप में दिखाई देने लगीं। माता के रूप में सम्मानित होने वाली स्त्री का स्थान सेविका ने लिया। जीवन और शक्ति प्रदायिनी देवी अब निर्बलताओं की प्रतीक बन गयी। "स्त्री जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतन्त्र, पराधीन, निःसहाय और निर्बल बन चुकी थी। इस युग में यह विश्वास दिलाया गया कि पति ही स्त्री के लिए देवता है और विवाह ही उसके जीवन का एक मात्र संस्कार है। अनेक पौराणिक गाथाओं और उपाख्यानों को ईश्वर द्वारा रचित

बताकर सतियों की कथाओं का प्रतिपादन किया गया। मनुस्मृति में यहाँ तक कह दिया गया कि स्त्री भी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है। बचपन में वह पिता के अधिकार में युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में रहे। यह भी कहा गया कि विवाह का विधान ही स्त्रियों को उपनयन (दूसरा जन्म) है, पति की सेवा ही गुरुकुल का वास है और घर का काम ही अग्नि की सेवा है। इस काल में स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया और स्त्रियों को मानसिक रूप से ही अयोग्य तथा दुर्बल सिद्ध करने के अनेक भ्रमपूर्ण प्रचार किये जाने लगे। कन्या का विवाह दस वर्ष अथवा अधिक से अधिक बारह वर्ष की आयु तक कर देने का विधान बनाया गया। विवाह पूर्णतया पिता का दायित्व हो गया जिसमें लड़की की इच्छा का कोई महत्व नहीं था जैसे कि जातक कथाओं से स्पष्ट होता है। इस युग में कुलीनता को विवाह का आधार मानने के कारण बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन बढ़ा। वास्तविकता यह है कि स्त्रियों की स्थिति के पतन में इस काल को आधारभूत कहा जा सकता है जिसके बाद स्त्रियाँ एक वस्तु बन गयीं जिन्हें पुरुष अपनी इंच्छानुसार किसी भी प्रकार उपयोग में ला सकता था।

मध्यकाल-

मध्यकाल का समय बारहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस युग में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं रह गयी थी। पहले की अपेक्षा वे निरन्तर पतनोन्मुख थी इस युग के स्मृतिकारों ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि पत्नी के लिए सबसे बड़ा धर्म पति की सेवा है। स्मृतिकारों का यह कहना है कि पति को अपनी पत्नी के प्रति किसी प्रकार की द्वेष भावना नहीं रखनी चाहिए क्योंकि दोनों केवल शरीर से भिन्न है, अन्यथा सभी कार्यों के लिए एक ही है। मेघातिथि का कहना है कि पति-पत्नी दोनों कानून के सम्मुख बराबर हैं पति का यह परम कर्त्तव्य है कि अनेक दोषों के रहते हुए ये गुणवती पत्नी का परिपालन करे। गम्भीर दोषों के होने

पर भी पत्नी को घर से नहीं निकाला जा सकता है। पत्नी में यदि दोष हो तो उन्हें दूर करने के लिए हल्का सा दण्ड दिया जा सकता है, यदि पति दूर देशों की यात्रा करे तो पत्नी के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना उसका कर्त्तव्य है। बार-बार अपराध करने पर ही किसी पत्नी का परित्याग किया जा सकता है।

पति के विदेश जाने पर स्त्री के लिए आवश्यक था कि निश्चित अवधि तक उसके लौटने की प्रतीक्षा करे। यदि पति उस अवधि से नहीं लौटे तो पत्नी का क्या कर्त्तव्य है? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि पति के न लौटने पर पत्नी को अपनी जीविका के लिए अनुचित पेशा स्वींकार नहीं करना चाहिए। कुछ विद्वानों का कहना है कि स्त्री को पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। अन्य लोगों का कहना है कि वह किसी के यहाँ सेवा कर सकती है औ पति के लौटने पर फिर उसके साथ रह सकती है।

विधवा स्त्री की स्थिति में यह परिवर्तन अवश्य हुआ था कि उन्हें परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा मिलने लगा था। इन सबके अतिरिक्त स्त्रियों की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती गई। स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार बन्द हो गया। अतः धर्म की दृष्टि से वे शूद्रवत हो गई। स्त्रियों के विवाह की आयु 8-10 वर्ष मान ली गई। फलस्वरूप वे पति के चुनाव के विषय में अपनी राय देने में असमर्थ थीं और उनकी शिक्षा नहीं हो पाती थी। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि उनके मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता था, वे अपने पति के कामों में सहयोग देने में असमर्थ होती थी, उन्हें पूर्ण रूप से अपने पति पर आश्रित रहना पड़ता था। पति ही उनके लिए देवता था। वे अपने कार्यों में कभी स्वतन्त्र नहीं थी पति अथवा अभिभावक सदैव उनकी रक्षा के लिए तत्पर रहते थे।

स्त्रियों की साधारणतः स्थिति खराब होने पर भी माँ का स्थान अच्छा ही था। मत्स्य पुराण का कहना है कि "माता का परित्याग किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं

है।" मेघातिथि[4] ने कहा है कि "माता यदि अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करती है तो भी उसे घर से बहिष्कृत नहीं करना चाहिए क्योंकि कोई माँ अपने पुत्र के लिए जातिच्युत नहीं होती है।

मंगोल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति जितनी तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हुई वह हमारे सामाजिक इतिहास में कलंक के रूप में सदैव याद रहेगा। यह सत्य है कि ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने के कारण भारतीय संस्कृति की रक्षा करना आवश्यक था, लेकिन स्त्रियों को समस्त अधिकारों से वंचित करके संस्कृति की रक्षा करने का औचित्य समझ में नहीं आता। स्त्री ही वास्तव में संस्कृति को स्थिर रखती है और स्त्रियों का सामाजिक जीवन जब चेतनाहीन हो जाता है तब संस्कृति अपने आप समाप्त हो जाती है। मध्यकाल में रक्त की पवित्रता को इतना संकीर्ण रूप दे दिया गया लड़कियों का विवाह 5-6 वर्ष की आयु में ही कर देना अच्छा समझा जाने लगा। स्त्रियों को शिक्षा से बिल्कुल वंचित कर दिया गया। पर्दा प्रथा इस सीमा तक पहुँच गई कि परिवार के अन्य सदस्य तो क्या स्वयं पति भी किसी के सामने अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता था। विवाह की सोचना भी अक्षम्य अपराध बन गया।

स्त्री की थोड़ी सी गलती पर उसे शारीरिक दण्ड दिया जाने लगा। शास्त्रकारों ने भी पति को अपनी पत्नी को प्रताड़ित करने का अधिकार दे दिया। पहली पत्नी के जीवित होते हुए भी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेना सामान्य सी बात हो गई। पुरुषों के लिए एक से अधिक पत्नियाँ रखना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। लड़कियों को पिता अथवा अपने संयुक्त परिवार की सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त करने से वंचित कर दिया गया। एक विधवा स्वयं अपने पुत्र की भी संरक्षिका नहीं बन सकती थी। यद्यपि इस काल में भी कुछ शास्त्रकारों ने स्त्रियों को सम्पत्ति अधिकार देने का प्रयत्न किया, लेकिन उनकी भी कटु आलोचना करके स्थिति में कोई भी परिवर्तन

नहीं करने दिया गया। जब पुरुषों का ही सामाजिक व्यवस्था पर पूर्ण अधिकार था तो स्वयं वह अपने इस अधिकार और अहम् को कैसे कम कर लेते? इन सब परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतया पुरुषों की दया पर निर्भर हो गई, अज्ञान में डूबा भारतीय समाज इन्हीं कुरीतियों और मिथ्यावाद को भारतीय संस्कृति का अंग समझने लगा और यही कुरीतियाँ धार्मिक विश्वास के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होने लगी। इस प्रकार यह वह काल था, जब रूढ़ियाँ धर्म बन चुकी थी और पाखण्डवाद जीवन का एक मात्र आधार था।

ब्रिटिश काल से हमारा तात्पर्य अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से स्वतन्त्रता पूर्व तक के समय से है। अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों द्वारा समाज सुधार के अनेक को स्पष्ट करता है। यद्यपि **1813**[5] में सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की ओर से यह आदेश दिया गया था कि वह सभी वर्गों में शिक्षा प्रसार करे लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्त्री शिक्षा को भारतीय मनोवृत्तियों के विरुद्ध कहकर इसे कई महत्व नहीं दिया। इसके पश्चात् अनेक प्रगतिशील भारतीयों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के कार्य का दायित्व स्वयं संभाला, लेकिन ये सभी प्रयत्न व्यक्तिगत स्तर पर ही थे, इन्हें सरकार की ओर से कोई संरक्षण नहीं मिल सका।

सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने **1828**[6] में ब्रह्म समाज की स्थापना करके सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसके फलस्वरूप 1829 में इस प्रथा को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को सम्पत्ति अधिकार देने, बाल-विवाहों को समाप्त करने और स्त्रियों में शिक्षा प्रसार करने के क्षेत्र में भी राजाराममोहन राय ने महत्वपूर्ण कार्य किये। सत्य तो यह है कि आपके ही प्रयत्नों में समाज सुधार आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो सका। महर्षि दयानन्द ने सबसे पहले **1875**[7] में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना करके हिन्दू समाज को वैदिक आदर्शों की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। आप स्मृतियों और रुढ़िवादी हिन्दू धर्म के कटु

आलोचक थे। उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा का प्रसार करने तथा पर्दा प्रथा और बाल विवाह का विरोध करने में इस संस्था का योगदान सबसे अधिक सक्रिय रहा है।

ईश्वरचन्द विद्यासागर, महर्षि दयानन्द के ही समकालीन समाज सुधारक थे। आपने यद्यपि किसी संस्था की स्थापना नहीं की लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर आपके प्रयत्नों में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। आपने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए विधवा विवाह और बहुपत्नी विवाह सम्बन्धी नियमों का व्यापक विरोध करके स्त्री शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। श्री ईश्वरचन्द विद्यासागर की व्यावहारिकता का इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने अपने लड़के तक का विवाह एक विधवा से कर दिया। इन्हीं प्रयत्नों से 1856 में 'विधवा विवाह कानून' पास हो सका। श्री ईश्वरचन्द विद्यासागर के द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उस समय एक ब्राह्मण की 80 पत्नियाँ थी। इस विषम समस्या को समाप्त करने के लिए भी आपने एक स्वस्थ्य जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। स्त्री शिक्षा के प्रति आपकी जागरूकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि 1855 और 1858 के बीच ही आपने 40 कन्या विद्यालय खोलकर स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। पूना में प्रो. कर्वे ने अनेक विधवा आश्रम खोलकर उनमें शिक्षा का प्रसार करना आरम्भ किया। इसी शताब्दी में अनेक प्रगतिशील महिलाओं जैसे दुर्गाबाई देशमुख, रमाबाई और लखमाबाई ने भी पुरानी रूढ़ियों की चिन्ता न करते हुए स्त्रियों को अपने अधिकार माँगने और समाज में एक सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी के सुधार आन्दोलन को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है जिनमें प्रथम महात्मा गाँधी द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत सुधार प्रयत्न, द्वितीय स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य तथा तृतीय रूप में संवैधानिक व्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने में सुधार आन्दोलनों ने अपनी भूमिका निभाई।

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम संगठित आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों का समर्थन करते हुए स्त्रियों के अधिकारों के औचित्य को स्पष्ट किया। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति सम्बन्धी सुधार कार्य को अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख अंग बना लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद प्रत्येक वर्ष स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने से सम्बन्धित प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को भेजकर उन्होंने सरकार का ध्यांन इस समस्या की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। इन प्रस्तावों में विशेष रूप से स्त्री शिक्षा के प्रसार, दहेज और कुलीन विवाह प्रथा पर नियंत्रण अन्तर्जातीय विवाह के प्रसार तथा बाल-विवाह की कानून द्वारा समाप्ति पर विशेष जोर दिया जाता था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने स्त्रियों की निद्रा को तोड़कर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसके फलस्वरूप पहली बार लाखों स्त्रियाँ घर की चार दीवारी से निकल कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ी। उन्होंने पहली बार अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचाना। इससे स्त्रियों में एक नवीन चेतना का विकास हुआ और वहीं चेतना बाद में उनकी प्रगति का आधार बन गई।

अनेक स्त्री संगठनों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। यद्यपि 1875 से ही 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद' की स्थापना हो जाने के बाद महिलाओं को संगठित करने का कार्य आरम्भ हो चुका था, लेकिन सर्वप्रथम श्री रानाडे और डॉ. ऐनीबेसेण्ट के प्रयत्नों से समस्त महिला संगठनों को एकजुट होकर सुधार कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया। इसके फलस्वरूप 1929[8] में विभिन्न संगठनों (महिला संगठनों) ने एक होकर 'अखिल भारतीय महिला संगठन' का सम्मेलन किया। पूना में इसके प्रथम अधिवेशन के समय स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने पर बल दिया गया और एक प्रस्ताव के द्वारा सरकार से माँग की गई कि सम्पत्ति विवाह और नागरिकता से सम्बन्धित स्त्रियों की परम्परागत निर्योग्यतायें कानून के द्वारा समाप्त की जाये। स्त्रियों को शिक्षा देने के दृष्टिकोण से

दिल्ली के 'लेडी इरविन कॉलेज' की स्थापना भी इसी संस्था के द्वारा की गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक महिला संघों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने तथा उन्हें रूढ़िगत जीवन से बाहर निकालकर संगठित रूप से कार्य का प्रोत्साहन दिया। ऐसे संगठनों में विश्वविद्यालय महिला संघ, भारतीय ईसाई महिला मण्डल, अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था तथा कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट आदि के नाम से विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

स्त्रियों के सुधार आन्दोलन का सुखद परिणाम हमारे संविधान की समानता पर आधारित व्यवस्थाओं और अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक अधिनियमों के रूप में देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही 1948 में सरकार के सामने 'हिन्दू कोड बिल' प्रस्तुत किया गया, लेकिन अनेक रूढ़िवादी तत्वों ने इसे नवीन संविधान का निर्माण होने की अवधि तक टालने में सफलता प्राप्त कर ली। 1950 में नवीन संविधान के अन्तर्गत पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकारों को मान्यता दे दी गई लेकिन 'हिन्दू कोड बिल' की स्वीकृति को पुनः यह कह कर टाल दिया गया कि 1952 में जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा ही इस प्रकार का कोई निर्णय लेना उचित है। 1952 में जब इसे पुनः लोकसभा में प्रस्तुत किया गया, तब अनेक राजनैतिक दलों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन स्त्रियों को ही इसके विरोध में लाकर खड़ा कर दिया जिनके अधिकारों की पुनः स्थापना के लिए ही इसे प्रस्तुत किया जा रहा था। इसके उपरान्त भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए इस बिल को अनेक खण्डों में विभाजित करके पास किया गया। इसके फलस्वरूप स्त्रियों की सभी निर्योग्यतायें समाप्त हो गई और उन्हें विवाह, सम्पत्ति, संक्षरता और विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के ही समान अधिकार प्राप्त होने से सामाजिक रूढ़ियों से छुटकारा पाने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे अधिनियमों में हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिन्दू नाबालिग और संरक्षता अधिनियम 1956, हिन्दू

दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम 1956, विशेष विवाह अधिनियम 1954 और दहेज निरोधक अधिनियम 1961 प्रमुख है। इन सभी अधिनियमों ने एक ऐसे वातावरण का निर्माण करने में योग दिया। जिसमें स्त्री की खोई हुई क्षमता को पुनः विकसित किया जा सके।

भारतीय समाज एवं नारी जीवन का परिदृश्य-

उपर्युक्त संदर्भ में नारियों को सामाजिक न्याय स्वयं ही प्राप्त करना होगा। समाज में ऐसा वातावरण पैदा करना होगा जहाँ से आम आदमी की सोच में बदलाव आये। इसके लिए महिलाओं के अन्दर ही एक शक्तिशाली रजिशील और वृहत सामाजिक चेतना जागृत करनी होगी, जिससे वे सहभागी सहकारिता को आधार पर आगे एक नये क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम बने और आने वाले समय में मानव का भविष्य स्वर्णिम बन सके।

अनके महिला संगठन पिछले एक दशक से नारियों को उत्पीड़न से बचाने के लिए अनेकानेक प्रयास कर रहे हैं, जिससे विश्व समाज का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ है। मौलिक अधिकारों को पाने का भी प्रयास किया गया है। चतुर्थ बीजींग महिला सम्मेलन उसी की एक कड़ी है।

जाति संस्था-सम्प्रत्यय विशेषताएं एवं परिवर्तित संदर्श-

जाति व्यवस्था यहाँ सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारण का सर्वप्रमुख आधार रही है। यह व्यवस्था सामाजिक विभाजन का एक विशेष रूप है जिसमें सम्पूर्ण समाज को एक-दूसरे से उच्च और निम्न अनेक भागों में विभाजित कर दिया गया। एक ओर, हिन्दू स्मृतियों ने जाति-व्यवस्था को इसकी उपयोगिता के आधार पर एक लाभप्रद संस्था के रूप में स्पष्ट किया, वहीं दूसरी ओर, आज यह व्यवस्था एक ऐसे अभिशाप के रूप में विकसित हो गयी जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हिन्दू समाज एक-दूसरे से पृथक् बहुत-सी छोटी-छोटी इकाइयों में छिन्न भिन्न हो गया। विभिन्न

समाजशास्त्रियों ने इस व्यवस्था की प्रकृति, उत्पत्ति तथा भारतीय समाज के लिए इसकी भूमिका के बारे में एक-दूसरे से भिन्न इतने अधिक विचार प्रस्तुत किये हैं कि सामाजिक स्तरीकरण अथवा सामाजिक विभाजन का कोई न कोई रूप प्रत्येक समाज में पाया जाता है। जिन आदिम समाजों में सभी व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समान समझ लिया जाता है, उनमें भी दूसरे व्यक्तिओं की तुलना में मुख्यिा के अधिकार और उसकी सामाजिक प्रस्थिति कहीं ऊँची होती है। व्यक्तिगत शक्ति और सम्पत्ति के आधार पर भी आदिम समाजों में ऊँच-नीच का विभेद सदैव पाया जाता रहा है। वर्तमान समाजों में भी व्यक्तिगत कुशलता, योग्यता सम्पत्ति, प्रजाति, धर्म अथवा संस्कृति के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण का एक रूप अवश्य देखने को मिलता है। अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि विभिन्न समूहों के बीच ऊँच-नीच का यह विभाजन इसलिए उपयोगी है कि इसी के फलस्वरूप सभी व्यक्ति अपनी योग्ता और कुशलता को बढ़ाकर निम्न से उच्च स्तर की ओर उठने का प्रयत्न करते हैं।

जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'जातः' से हुई है जिसका अर्थ है, जन्म। इकसा तात्पर्य यह है कि जिस समूह की सामाजिक स्थिति का निंर्धारण जन्म के आधार पर होता है, उसे हम एक जाति कहते हैं। अंग्रेजी शब्द 'caste' लैटिन शब्द 'casta' से बना है जिसका अर्थ वंश, नस्ल, जन्म तथा विभेद से है। इससे स्पष्ट होता है कि संसार के विभिन्न समाजों में जहाँ कहीं भी जन्म, वंश अथवा प्रजातीय भेद-भाव के आधार पर एक-दूसरे से उच्च और निम्न समूहों का निर्माण होता है, वहाँ उन्हें एक-एक जाति के रूप में देखा जाता है।

जाति की परिभाषा अनेक विद्वानों ने व्यक्त की है-

"जाति एक बन्द वर्ग है।" इस बात को प्रतिपादित करने वाले मजूमदार तथा मदान[9] हैं।

"जाति एक बन्द प्रस्थिति-समूह है।" इस कथन को मैक्स वेबर[10] ने कहा है।

ऐसे विद्वानों में एन.के. दत्ता, जी.एस. घुरिये, केतकर, इरावती कर्वे, श्रीनिवास, सेनार्ट, हट्टन तथा लुईस ड्यूमॉं आदि प्रमुख हैं।

एन.के. दत्ता[11] ने जाति संस्था की कुछ विशेषतायें बतायी हैं:-

(क) एक जाति के सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकते।

(ख) प्रत्येक जाति के सदस्यों पर दूसरी जाति के लोगों के साथ खान-पान के सम्बन्ध रखने पर कुछ विशेष प्रतिबन्ध होते हैं।

(ग) अधिकांश जातियों के पेशे निश्चित होते हैं।

(घ) सभी जातियों के बीच ऊँच-नीच का एक निश्चित संस्तरण होता है।

(ङ) व्यक्ति की जाति का निर्धारण उसके जन्म से होता है।

(च) सम्पूर्ण जाति-संस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और श्रेष्ठता पर आधारित है।

डॉ. जी.एस. घुरिये[12] ने जाति की संरचना तथा नियमों के अनुसार कुछ विशेषतायें व्यक्त की हैं:-

(क) जाति-संस्था समाज के खण्डनात्मक विभाजन को स्पष्ट करती है।

(ख) विभिन्न जातियों के बीच ऊँच-नीच का एक स्पष्ट संस्तरण होता है।

(ग) विभिन्न जातियों के बीच खान-पान तथा सामाजिक सम्पर्क पर अनेक प्रतिबन्ध होते हैं।

(घ) जाति-संस्था अनेक नागरिक तथा धार्मिक निर्योग्यताओं और विशेषाधिकारों से सम्बन्धित है।

(ङ) यह संस्था व्यवसाय के स्वतन्त्र चुनाव पर प्रतिबन्ध लगाती है।

(च) यह संस्था अनेक विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धों पर आधारित है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा जाति-संस्था की विशेषताओं का वर्गीकरण-

(१) **समाज का खण्डनात्मक विभाजन-** जाति एक ऐसी संस्था है जो सम्पूर्ण समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातियों में विभाजित करती है।

(२) **संस्तरण-** जाति में जातियों के बीच ऊँच-नीच का एक स्पष्ट संस्तरण होता है।

(३) **आनुवंशिक सदस्यता-** व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वह आजीवन उसी जाति का सदस्य बना रहता है।

(४) **अन्तर्विवाह-** अन्तर्विवाह जाति संस्था का सारतत्व है। व्यवहारिक रूप से अन्तर्विवाह के नियम स्थाई और प्रभावपूर्ण हैं।

(५) **पवित्रता तथा अपवित्रता की धारणा-** जिन जातियों को जन्म अथवा व्यवसाय के आधार पर अपवित्र माना गया, उनसे उच्च अथवा पवित्र जातियों द्वारा सामाजिक सम्पर्क रखने पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं।

(६) **खान-पान के प्रतिबन्ध-** इस प्रतिबन्ध का सम्बन्ध भी पवित्रता और अपवित्रता की धारणा से है।

(७) **व्यावसायिक विभाजन-** प्रत्येक जाति संस्था में व्यवसाय का स्वरूप पूर्व निर्धारित है।

(८) **धार्मिक स्वीकृति-** प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे सभी नियमों का उद्देश्य ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि बनाना था। इस लिए जाति को धर्म से जोड़कर इस कथन को कहा गया है।

यही बात **मैकाइवर**[13] ने अपने कथन में की है:-

(1) जाति एक बन्द समूह है।

(2) जाति एक स्थिर विभाजन है।

(3) जातियों का संस्तरण अधिक निश्चित तथा कठोर है।

(4) जातियाँ विभिन्नतायुक्त होती हैं।

(5) जाति की सदस्यता प्रदत्त है।

(6) जातियाँ अन्तर्विवाही होती हैं।

ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व जाति-संस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुये लेकिन स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तर्गत जाति-संस्था में विशेष परिवर्तन स्पष्ट हो रहे हैं। संविधान के द्वारा धर्म, जाति और वंश के भेदभावों को समाप्त करके सामाजिक समानता, न्याय और स्वतन्त्रता को दिन प्रतिदिन महत्व दिया गया है। संसद, विधान सभाओं, पंचायतों, पंचायत राज्य व्यवस्था तथा सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों को आरक्षण मिलने से जातियों का आधार ही समाप्त हो गया है। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण ने एक जाति विरोधी पर्यावरण का निर्माण किया है। शिक्षा के प्रसार ने कपोल कल्पित गाथाओं और अन्ध विश्वासों को समाप्त किया। नये सामाजिक अधिनियम जाति-संस्था के नियमों के विरुद्ध सिद्ध हुये। संयुक्त परिवार का विघटन, जाति के नियमों का पालन करने की शिक्षा मिलना बन्द हो गया। महिलाओं में जागरूकता बढ़ी अपने अधिकारों से परिवार और समाज में वंचित न रह सके। जातीय संगठनों के प्रभाव में कमी होने लगी तथा जाति के नियमों का उल्लंघन होने लगा।

आज जाति व्यवस्था से सम्बन्धित खान-पान, छुआछूत, पवित्रता व अपवित्रता के प्रतिबन्ध ही कमजोर नहीं हुए बल्कि विभिन्न जातियों के व्यक्ति व्यावसायिक आधार पर संगठित होने लगे हैं। अब उनके व्यावसाय परम्परागत न होकर आजीविका उपार्जित होने लगे हैं।

<u>परिवार संस्था-अवधारणा एवं स्वरूप-</u>

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि "विज्ञान के वर्तमान युग में मनुष्य ने आश्चर्यजनक वस्तुओं का आविष्कार किया है लेकिन इस सत्य का शायद ही कोई अपवाद हो कि परिवार और विवाह जैसी सुन्दर संस्थाओं की खोज आज भी मानव की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है।" मानव समाज के सम्पूर्ण इतिहास में परिवार सबसे महत्वपूर्ण संस्था रही है। सच तो यह है कि सभ्यता का इतिहास वास्तव

में परिवारों के संगठन का ही इतिहास है। यदि परिवार में बच्चों का पालन- पोषण न किया जाये तथा पारिवारिक सीख के द्वारा संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए हस्तान्तरित न किया जाये तो समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा परिवार ही एक मात्र ऐसी संस्था है जो बच्चे को समाज के नियमों से परिचित कराती है, उसमें मानवीय गुणों का विकास करती है तथा एक जैविकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है।

मैकाइवर और पेज[14] ने का परिवार के सम्बन्ध में कथन है- "परिवार उस समूह का नाम है जो यौन सम्बन्धों पर आश्रित है और इतना छोटा एवं शक्तिशाली है जो सन्तान के जन्म एवं पालन-पोषण की व्यवस्था करता है।

लूसी मेयर[15] का कथन है- "परिवार एक गृहस्थ समूह है जिसमें माता-पिता तथा उनकी सन्तानें साथ-साथ रहती हैं। इसके मूल रूप में दम्पत्ति और उसकी सन्तानें रहती हैं।"

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिवार विवाह, रक्त-सम्बन्धों अथवा नातेदारी से बँधे हुए व्यक्तियों का वह छोटा संगठन है जिसमें वैयक्तिकता, प्राथमिक सम्बन्ध तथा स्थायित्व के गुण सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि परिवार ही सामाजिक ढाँचे की इकाई है।

परिवार के स्वरूप-

संसार के सभी समाजों में परिवार का रूप समान नहीं होता। किसी समाज में जैसे सांस्कृतिक नियम होते हैं, उन्हीं के अनुसार परिवार एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लेता है। सभी प्रकार के परिवार को सामान्य रूप से तीन आधारों पर विभाजित किया जा सकता है।

(क) सत्ता, स्थान और वंश नाम के आधार पर-

(१) मातृ-सत्तात्मक परिवार-

ये वे परिवार जहाँ सत्ता, स्थान तथा वंशनाम के दृष्टिकोण से माता को प्रधानता दी जाती है। इस संस्था में परिवार की शक्ति किसी स्त्री सदस्य के हाथों में ही निहित रहती है और सभी सदस्यों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। इस प्रकार के परिवार मातृ-सत्तात्मक परिवार होते हैं। इन परिवारों को मातृस्थानीय और मातृवंशीय परिवार भी कहा जाता है।

(२) पितृ-सत्तात्मक परिवार-

ये परिवार वे होते हैं जहाँ सत्ता, स्थान व नाम के दृष्टिकोण से पिता को प्रधानता दी जाती है। ऐसे परिवार को पितृस्थानीय परिवार और पितृवंशीय परिवार भी कहते हैं। स्थान के आधार पर परिवार के तीन अन्य रूप भी पाये जाते हैं- नवस्थानीय परिवार, मातुलेय परिवार तथा द्वि-स्थानीय परिवार हैं।

(ख) संगठन तथा आकार के आधार पर-

(१) केन्द्रीय परिवार-

ऐसे परिवार आज के युग की देन हैं ऐसे परिवारों में पति-पत्नी अपने अविवाहित बच्चों के साथ स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। संगठन और आकार पारिवारिक संख्या सीमित और मजबूत होती है। वयस्क बच्चे विवाह बाद एक पृथक एकाकी परिवार की स्थापना कर लेता है ऐसे परिवार को प्राथमिक परिवार भी कहा जाता है।

(२) संगठित परिवार-

जब किसी परिवार में तीन चार या इससे भी अधिक पीढ़ियों के रक्त सम्बन्धी उनकी पत्नियाँ तथा विवाहित और अविवाहित बच्चे किसी वयोवृद्ध व्यक्ति के निर्देशन में रहते हों, तब ऐसे परिवार को संयुक्त परिवार कहा जाता है।

(३) विस्तृत परिवार-

पश्चिमी समाजों में एक ऐसा परिवार जिसमें वृद्ध व्यक्ति, उसकी पत्नी, उनके पुत्र तथा उनकी पत्नियाँ और बच्चे साथ-साथ रहते हों, उसे विस्तृत परिवार कहा जाता है।

(४) मिश्रित परिवार-

केन्द्रीय तथा संयुक्त परिवार की विशेषताओं का मिश्रण ही मिश्रित परिवार कहलाता है।

(ग) विवाह के स्वरूप के आधार पर-

(१) एकविवाही परिवार-

ये परिवार आकार में सबसे छोटे होते हैं क्योंकि ऐसे परिवारों में केवल पति-पत्नी और उनके बच्चे ही रहते हैं।

(२) बहुपति विवाही परिवार-

ये परिवार वे होते हैं जिनमें एक स्त्री अनेक पुरुषों से विवाह करके परिवार की स्थापना करती है। ऐसे विवाहों के स्वरूप को भ्रातृ-बहुपति विवाह तथा अभ्रातृ-बहुपति विवाह भी कहा जाता है।

(३) बहुपत्नी विवाही परिवार-

जब पुरुष एक समय में ही अनेक स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करके परिवार का निर्माण करता है, तब ऐसे परिवार को हम बहुपत्नी विवाही परिवार कहते हैं।

इसके अलावा विभिन्न विद्वानों ने परिवार के कुछ अन्य प्रकार के परिवारों का उल्लेख किया है- एण्डरसन ने परिवारों को 'जन्म के परिवार' तथा 'प्रजनन के परिवार' में विभाजित किया है ऐसे परिवार भारतीय समाज की विशेषता के अनुरूप हैं।

विवाह संस्था- अवधारणा प्रकार, मान्याएँ-

विवाह एक सांस्कृतिक संस्था है विभिन्न संस्कृतियों में भिन्नता होने के कारण विवाह के रूप में अन्तर पाया जाना भी बहुत स्वाभाविक है। कुछ समाजों में विवाह का स्वरूप धार्मिक होता है, जबकि कुछ संस्कृतियों में विवाह को एक समझौते के रूप में, कुछ समाजों में विवाह मित्रता का एक सुविधापूर्ण बन्धन है, जबकि अनेक आदिम समूह में विवाह को एक आर्थिक संस्था तक मान लिया जाता है। इन समूहों में स्त्री को ही सम्पत्ति के रूप में देखा जाता है। वृहत रूप में विवाह एक ऐसी संस्था है जो सभी समाजों में स्त्री और पुरुष को यौनिक सम्बन्धों की नियमबद्ध पूर्ति करने की अनुमति प्रदान करता है और समाज की निरन्तरता को बनाये रखने में योगदान करता है।

वेस्टरमार्क[16] का कथन है कि परिवार ही विवाह का आधार है। विवाह सम्बन्ध जिन प्रथाओं पर आधारित होते हैं, उनका निर्धारण परिवार द्वारा होता है। विवाह सम्बन्धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख वेस्टरमार्क ने इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

(1) विवाह एक सामाजिक संस्था है।

(2) यह संस्था प्रमुख रूप से व्यक्ति को यौन सम्बन्धों का अधिकार देती है।

(3) विवाह मान्य तभी होगा जब दोनों पक्षों के बीच विवाह सम्बन्ध का निर्धारण किसी प्रथा अथवा कानून के अनुसार हुआ हो।

(4) विवाह का प्रभाव सामाजिक, आर्थिक पति और पत्नी के बीच सम्पत्ति अधिकारों तथा सामाजिक प्रस्थिति पर भी पड़ता है।

(5) विवाह का कार्य एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का भी निर्धारण करना है।

(6) विभिन्न समाजों में विवाह पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

मरडॉक ने विवाह सम्बन्धी चार विशेष बातों को महत्वपूर्ण माना है- (क) यौनिक इच्छाओं की पूर्ति, (ख) परिवार की स्थापना, (ग) आर्थिक सहयोग, (घ) बच्चों के पालन-पोषण के द्वारा मूल प्रवृत्ति की सन्तुष्टि।

हमारे समाज में यौन-सन्तुष्टि को विवाह का सबसे गौण उद्देश्य माना गया है। गृहस्थ जीवन में इसको अधिक महत्व दिया जाता है। संसार के विभिन्न समाजों में अनेक प्रकार की सांस्कृतिक विभिन्नतायें होने के कारण विवाह के रूप में भी बहुत अधिक भिन्नता देखने को मिलती है। ये भिन्नतायें तीन आधारों से सम्बन्धित हैं- (क) जीवनसाथी के चुनाव का ढंग, (ख) पति अथवा पत्नियों की संख्या (ग) विवाह से सम्बन्धित नियम। अनेक समाज ऐसे भी हैं जिनमें विवाह क्रिया में अन्तर देखने को मिलता है। इस अन्तर को विवाह के अनेक स्वरूपों में स्पष्ट दिखाई देता है।

(१) एकविवाह-

पिडिंगटन का कथन है कि- "एकविवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें किसी एक समय कोई भी पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता।" एकविवाह प्रत्येक समाज में विवाह का सर्वोत्तम नियम माना जाता है। इस बात को वेस्टरमार्क ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य तो क्या, पशु और पक्षी भी हमेशा से एकविवाही ही रहे हैं।

(२) बहुपत्नी विवाह-

भारत में वैदिक काल से लेकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ऐसा कोई समय नहीं रहा जबकि यहाँ बहुपत्नी विवाह का प्रचलन न रहा हो। मध्यकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक अधिक पत्नियों का होना सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान का विषय भी समझा जाने लगा था। समाज में बहुत से जागीरदार, जमींदार, सम्पन्न व्यक्ति और अभिजात वर्ग के सदस्य एक साथ अनेक स्त्रियों से विवाह करके जीवन व्यतीत करना अच्छा समझने लगे। भारत में आज भी बहुत सी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है। नागा, वैगा, गोंड, खस, टोडा और 'हो' आदि जनजातियाँ प्रमुख हैं।

(३) <u>बहुपति विवाह</u>-

बहुपत्नी विवाह प्रमुख रूप से जनजातियों के जीवन से ही सम्बन्धित है। माइकेल का कथन है- "एक स्त्री द्वारा एक पति के जीवित होते हुए अन्य पुरुषों से भी विवाह करना अथवा एक समय पर दो या दो से अधिक पुरुषों से विवाह करने की स्थिति को बहुपत्नी विवाह कहते हैं।"

सभी समाजों में आज विवाह संस्था नये परिवेश ग्रहण कर रही है। यह सच है कि कुछ समाजों में विवाह के रूप में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है, जबकि कुछ समाजों में विवाह से सम्बन्धित मान्यताएँ, निषेध और आधारभूत सिद्धान्त पूर्णतया बदल चुके हैं। स्वतन्त्रता के बाद बनने वाले सामाजिक विधानों ने भी विवाह के रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। इन विधानों के कारण केवल एक-विवाह को ही मान्यता दी गई है तथा विधवाओं की सभी निर्योग्यताओं अथवा जाति सम्बन्धी बन्धनों को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। सामाजिक विधानों के सामने गोत्र, प्रवर अथवा टोटम के प्रतिबन्धों का कोई महत्व नहीं है। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप विवाह से सम्बन्धित पुरानी समस्यायें जरूर समाप्त हो गयी हैं लेकिन आज की सबसे बड़ी समस्य यह है कि विवाह का धीरे-धीरे व्यपारीकरण हो रहा है। व्यापारीकरण का स्पष्ट रूप हमें दहेज प्रथा की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के रूप में देखने को मिल रहा है।

<u>**विवाह के नियम तथा मान्यताएँ**</u>-

विवाह के नियमों द्वारा कालान्तर में जाति-व्यवस्था के नियंमों को भी प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया। भारत में जब स्मृतियों की रचना होना आरम्भ हुई तब स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को अधिक अधिकार मिल जाने के कारण विवाह के नियमों द्वारा पुरुषों की श्रेष्ठता को भी स्थापित करने का भी प्रयत्न किया गया। विवाह मुख्य तीन नियमों पर आधारित है- अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह तथा अनुलोम विवाह। विवाह के यह निमय प्रमुख मान्यताओं को स्पष्ट करते हैं। विवाह से सम्बन्धित वर्तमान परिवर्तनों

ने उन रूढ़ियों को समाप्त करने में विशेष योगदान किया है जिन्होंने स्मृतिकालीन धर्म की आड़ में नारी जीवन को अभिशप्त कर रखा था।

सम्बन्धित साहित्य का सिंहावलोकन-

भारतीय सन्दर्भ में नारी व समाज सम्बन्धी समाजशास्त्रियों ने जो अध्ययन किये हैं, उनमें जी. खन्ना (1978), के. प्रमिला (1974), गुप्ता जी (1976), के. स्कालास्तिक (1982), नन्दा वी.आर. (1976), मेहता आर. (1970), शर्मा जी (1971), मित्रा एस.एम. (1981), सिंह रमा (1988), त्रिपाठी चन्द्रावली (1981), सरला देवी (1971), सिन्हा, रघुवीर (1978), अस्थाना प्रतिमा (1974), डिसूजा ए. (1980), डॉ. मित्तल (1913) द्वारा हिन्दू कानून में स्त्रियों की स्थिति, सी. बादल (1925) ने अर्वाचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन, ए.एस. अल्टेकर (1938) ने हिन्दू सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति, आशारानी व्होरा[17] (1982) द्वारा भारतीय ग्रामीण महिलाओं की प्रस्थिति सम्बन्धी अध्ययन, के.एम. कपाड़िया[18] (1958) द्वारा किया गया भारत में विवाह एवं परिवार, देविका जैन (1980) ने भोजन, कपड़ा और मकान के लिए अन्य क्षेत्रों में संगठित महिलाओं का अध्ययन, महिलाओं की राजनीतिक प्रस्थिति एवं उनकी सहभागिता सम्बन्धी अध्ययन, एम. कौर[19] (1968) ललिता लट्टा[20] (2001) कुरुक्षेत्र, महिला विकास योजनाएं और क्रियान्वयन, मधु श्री सिन्हा (2002) कुरुक्षेत्र, सर्वांगीण विकास में महिलाओं की भूमिका : एक सामाजिक अध्ययन रिपोर्ट, नीलम मकोल और सन्दीप शर्मा (2006) ने सामाजिक विकास शिक्षित महिलाओं का योगदान, निर्मल कुमार आनन्द[21] (2007) ने पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाएं, Pai, Sudha[22] (2000) कांन्ट्रिब्यूशन टू इण्डियन सॉसियालॉजी जरनल में New social and political movements of dalit's : A study of Meerut District. इसमें मेरठ जनपद के गाँवों में दलित जागृति के नये प्रकारों का अध्ययन किया गया है सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जागृति के मांध्यम से दलित

जागृति तीव्र गति से बढ़ रही है। O sella, Flippo; O Sella, Carolina (1990) मॉडल एशिया स्टडीज जनरल में From Transiena to Immanence : Consumption, Life Styal and Social Molrility in Kerala, South India. इसमें दक्षिण भारत में केरला के इजका दलित समुदाय पर अध्ययन किया गया है उनकी व्यक्तिगत प्रगति और सामाजिक स्थिति को प्रगति ने उनकी सामाजिक गतिशीलता द्वारा किस प्रकार प्रभावित करते हुए उन्हें मुख्य धारा से जोड़ दिया है। Velaskar, Padma[23] (1994) में टाटा इन्स्टीट्यूट सोशल साइन्सेज जरूक में Literacy for Women Adaptation or Empowerment में बॉम्बे की दलित महिलाओं की साक्षरता का अध्ययन किया गया। तथ्यों को क्षेत्र अध्ययन, व्यक्तिगत साक्षात्कार, शिक्षित-अशिक्षितों से बात करके और सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं एजेन्सियों के अध्ययन के आधार पर एकत्रित किया गया है। Snatrugna, M. (1994) इन्टरनेशनल सोसियालॉजिकल एशोसिएशन में The small voice of History : Literacy and Liberation. भारत में 1980 में राष्ट्रीय शैक्षिक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था जिसका दलितों प्रमुखतः स्त्रियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। आन्ध्र प्रदेश की नेल्लौर डिस्ट्रिक्ट की स्त्रियाँ इतनी प्रभावित हुयीं कि उन्होंने रात्रि शैक्षिक कार्यक्रम में भाग लिया और शराबबन्दी के लिए आन्दोलन चलाया। आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें नई पुरानी मान्यताओं, पश्चिमी सभ्यता, भारतीय परम्पराओं आदि के चौराहों पर खड़ी भारतीय नारी के मानस पटल पर होने वाली उथल-पुथल उंसका संघर्षात्मक दृष्टिकोण, उसका सीमान्त व्यक्तित्व व व्यवहार आदि सम्यक् प्रतिबिम्बित किया गया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक विषम परिस्थितियों में अनुसूचित जातीय नारियों से सम्बद्ध अध्ययनों की अभी और आवश्यकता है। मेरी दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन नारी जीवन व सामाजिक न्याय के विषयान्वेषण हेतु भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। क्योंकि जहाँ एक ओर जाति पंचायत जैसी संस्थाएँ परम्परागत सामाजिक न्यायिक

व्यवस्था का अभिन्न अंग बनकर नारियों की समस्याओं के निदान में अपनी अहम् भूमिका का निर्वाहन करती रही हैं वहीं सम्प्रति विभिन्न वैधानिक प्राविधानों ने परम्परागत विकृतियों एवं पक्षपातपूर्ण निर्णयों के प्रतिपक्ष में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जिससे परम्परागत सामाजिक न्याय व्यवस्था अप्रासंगिक सी प्रतीत होने लगी है। इस सन्दर्भ में अनुसूचित जातीय नारियों की स्थिति एवं उनका दृष्टिकोण जानना अत्यन्त प्रासंगिक एवं समीचीन ही है।

अध्ययन का उद्देश्य-

सामाजिक अध्ययनों के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं जो कि उनके केन्द्र बिन्दु हैं। यही उद्देश्य उस अध्ययन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। उद्देश्यों को निश्चित करने पर ही एक समाज वैज्ञानिक अपने लक्ष्य की ओर योजनावद्ध तरीके से बढ़ सकता है अन्यथा हम शोध के रास्ते में ही भटक जायेंगे और अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पायेंगे।

मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है, किसी वस्तु के बारे में जानना उसका मौलिक गुण है यही गुण एक अनुसंधानकर्ता को प्रेरणा प्रदान करता है और यही प्रेरणा व्यक्ति को अनुसंधान के उद्देश्यों को पूरा करने में मद्द करती है। प्रत्येक शोध कार्य किसी न किसी उद्देश्य को लेकर किया जाता है। वर्तमान शोध कार्य भी कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है जो निम्नलिखित हैं:-

(1) अनुसूचित जाति महिलाओं (सूचनादाताओं) की सामाजिक, आर्थिक दशाओं का विश्लेषण करना है।

(2) अनुसूचित जाति महिला की पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को उजागर करना।

(3) समाज में सामाजिक-न्यायिक विकृति के संदर्भ में अनुसूचित जाति महिलाओं के विचारों का अध्ययन करना।

(4) अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा अपने दैनिक जीवन में विभिन्न सामाजिक न्यायिक क्रिया-कलापों के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं को उजागर करना है।

(5) अनुसूचित जाति महिलाओं के जीवन में परिवर्तन की प्रक्रियाओं से उनकी न्यायिक व्यवस्था से सम्बद्ध आस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना।

(6) अनुसूचित जातीय महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विविध पक्षों पर पड़ने वाले सामाजिक न्याय व्यवस्था के प्रभावों का अध्ययन करना है।

उपकल्पना-

सामाजिक शोध के अन्तर्गत तथ्यों के नियंत्रित और वस्तुनिष्ठ रूप से अध्ययन करने में उपकल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए *गुडे एवं हॉट (1952)* ने उपकल्पना को परिकलन सिद्धान्त और शोध के बीच एक आवश्यक कड़ी के रूप में देखा है जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायक होती है। *बोगार्डस* ने शोध की सीमा में उपकल्पना को परीक्षण के लिए प्रस्तुत की गयी एक मान्यता प्राप्त कड़ी के रूप में स्थापित किया है। इस उद्देश्य से प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित प्राकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है-

भारतीय समाज में परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं के समन्वित प्रभाव से सम्प्रति अनुसूचित जातीय महिलायें, सामाजिक न्याय व्यवस्था से सम्बन्धित परम्परावादी, रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी जीवन दर्शन से परे होकर समाज में नारी अस्तित्व, सतीत्व आदि को सुरक्षित रखने के प्रति अधिक प्रगतिशील विचार रखने लगी हैं। और सामाजिक विधानों के प्राविधानों द्वारा अपने अधिकारों को जागरूक होने लगी हैं।

परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था का स्वरूप-

महिलाओं से संबन्धित कानून-

(१) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005-

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 भारत के राजपत्र में 14 सितम्बर 2005 को अधिसूचित किया गया। यह अधिनियम महिलाओं को सभी प्रकार की घरेलू हिंसा से संरक्षण प्रदान करने वाला व्यापक कानून है। इस अधिनियम के कार्यक्षेत्र में वे सभी महिलायें शामिल हैं, जो दुर्व्यवहार करने वाले की सम्बन्धी हैं या रही हैं और जो शारीरिक, यौन, मानसिक, शाब्दिक अथवा भावनात्मक हिंसा की शिकार हुई हैं। यह अधिनियम 26 अक्टूबर 2006 से लागू किया गया है।

(२) यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण विधेयक, 2005-

महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण का अधिकार प्रदान करने के लिए विधेयक का प्रारूप राष्ट्रीय महिला आयोग और इस क्षेत्र में कार्य कर रहे एवं अपेक्षित अनुभव रखने वाले प्रतिष्ठित महिला संगठनों के परामर्श से तैयार किया गया है। प्रस्तावित नये कानून में संगठित, असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्रों यहाँ तक कि उन प्रतिष्ठानों में कार्यरत महिलाओं को भी शामिल किया जायेगा, जिनमें औपचारिक नियोक्ता कर्मचारी सम्बन्ध मौजूद नहीं है।

बीजिंग कार्यवाई मंच-

बीजिंग में वर्ष 1995 में आयोजित चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन एक ऐतिहासिक घटना थी, जब घोषणा और कार्यवाही मंच अंगीकृत किये गये, जिनके परिणामस्वरूप महिला सशक्तिकरण के कार्य में तेजी आयी। भारत ने बिना किसी शर्त के इन दोनों को अंगीकृत किया और गम्भीर रूप से चिंताजनक 12 क्षेत्र भी अभिनिर्धारित किये। इन क्षेत्रों में गरीबी, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, महिलाओं के प्रति हिंसा, सशस्त्र संघर्ष में महिलाएँ, अर्थ-व्यवस्था, अधिकार और निर्णय लेने की प्रक्रिया, महिलाओं की उन्नति का संरस्थागत तंत्र, प्रचार माध्यम, पर्यावरण, महिलाओं एवं बालिकाओं के मानवाधिकार शामिल हैं।

सैद्धान्तिक उन्मेष-

महिलाओं के शोषण तथा उनके प्रति किये गये सामाजिक अन्याय की व्याख्या के लिए निम्नलिखित सैद्धान्तिक उपागम अपनाये गये हैं:-

(क) पितृसतात्मक उपागम

(ख) अन्तर्वैयक्तिक शक्ति उपागम

(ग) सन्दर्भ-विशेष उपागम

(क) पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण-

इस विचार के अनुसार, एक व्यक्ति द्वारा एक महिला का शोषण उसके साथ दुर्व्यवहार या उसका अपमान एक व्यक्तिगत समस्या नहीं है। यह तो महिलाओं पर पुरुषों के प्रभावशीलता/प्रधानता की व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति है। महिलाओं की दयनीय दशा की सामाजिक सहनशीलता पितृसत्तात्मक मानदण्डों की ही अभिव्यक्ति है जो समाज व परिवार में पुरुषों के वर्चस्व/प्रभुत्व का समर्थन करती है।

डेलमार्टन, एक प्रसिद्ध नारीवादी ने कहा है पितृसत्तात्मक परिवार के स्वरूप की ऐतिहासिक जड़ें बड़ी प्राचीन एवं गहरी हैं। जब तक कि विवाह और परिवार के नये प्रतिमान नहीं बनाये जाते, महिलाओं का शोषण व प्राचीन समय से चली आ रही परम्पराओं से स्वाभाविक रूप में पनपता रहेगा। *दुबाश और दुबाश* ने भी इस कारक पर बल देते हुए महिलाओं के प्रति हिंसा को स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि वे पुरुष जो महिलाओं के प्रति हिंसा का प्रयोग करते हैं वे वास्तव में समाज में, प्रचलित सांस्कृतिक निर्देशों जैसे अक्रामकता, पुरुष प्रधानता और स्त्रियों की अधीनता के आधार पर जीते हैं और ये अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए बल का साधन के रूप में प्रयोग करते हैं।

पितृसत्ता वह संरचनात्मक और संस्थात्मक स्थितियाँ उत्पन्न करती हैं जिनसे निवास, परम्परा, सत्ता तथा सपत्ति अधिकार पुरुषों के विशेषाधिकार हो जाते हैं। इस

प्रकार पुरुष प्रधानता स्पष्ट रूप से इस प्रकार की संरचनात्मक स्थिति का प्रतिफल है जो कि पुरुषों की शक्ति को तथा स्त्रियों की अधीनता को निश्चित करती है तथा सार्वजनिकता को पुरुषों का अधिकार क्षेत्र और घर को स्त्री का अधिकार क्षेत्र बनाती हैं।

(ख) अन्तर्वैयक्तिक शक्ति दृष्टिकोण-

इस विचार का केन्द्र बिन्दु समाज के स्तर पर रचित संरचनात्मक असमानता नहीं है, बल्कि समाज और परिवार में असमानता तथा शक्ति संतुलन है। ये लोग जो 'शक्ति की समानता' में विश्वास करते हैं घर और बाहर दोनों जगहों स्त्रियों का आदर करते हैं, जबकि असमतावादी शक्ति संरचना में विश्वास करने वाले लोग उनका अपमान करते हैं एवं उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं।

(ग) सन्दर्भ-विशेष दृष्टिकोण-

महिलाओं के प्रति सामाजिक अन्याय एवं शोषण की व्याख्या करने में यह दृष्टिकोण तीन विशेष कारकों पर केन्द्रित है- परिवार संरचना, शोषक के गुण तथा शोषित महिलाओं के तनाव। परिवार संरचना में न केवल सम्बन्धों का आयाम एवं भूमिकायें बल्कि अन्तर्क्रिया के तरीके भी सम्मिलित हैं। शोषक के गुणों से अभिप्राय उन गुणों से है जैसे भावुकता, लालच, प्रभुत्व, स्वार्थीपन आदि। शोषित के तनावों से अर्थ है शोषित का सीधापन और निष्क्रियता जिनके कारण वह विरोध की इच्छा का दमन कर देती है। यह उसकी साधनहीनता, आर्थिक निर्भरता तथा पति व ससुराल वालों के समर्थन का अभाव का प्रतिफल है।

एक नया सैद्धान्तिक मॉडल-

इस प्रकार के समष्टिवादी उपागम से महिलाओं के प्रति अपराधों या उनके शोषण को समझने के लिए एक नवीन सैद्धान्ति मॉडल प्रस्तुत किया जा सकता है। यह मॉडल शोषित महिला के व्यक्तित्व के गुणों, तथा उन सामाजिक, परिस्थितियों में

जिनमें वह रहती है या कार्य करती है, के बीच सलग्नता पर आधारित है। यह मॉडल इस कल्पना पर आधारित हैं कि महिला का शोषण (बलात्कार, छेड़छाड़, मारपीट, दहेज के लिए सताया जाना आदि) महिला के व्यक्तित्व उसकी सहनशीलता अपनी प्रस्थिति तथा भूमिका के विषय में महिला का व्यक्तिगत विचार तथा चुनौतियों को स्वीकार करने की उसकी योग्यता एवं धीरता की भावना तथा उसका परिस्थितियों के बीच की अन्तर्क्रिया का प्रतिफल है।

मॉडल

व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों, सामाजिक परिस्थितियों तथा पुरुषों द्वारा महिलाओं के शोषण के बीच सम्बन्ध का मॉडल

महिला के गुण | महिला की सामाजिक परिस्थितियाँ
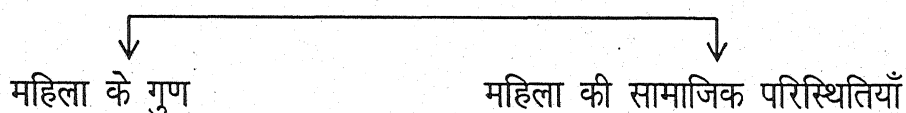
प्रत्येक स्त्री विभिन्न विचारों व आशाओं से उक्त व्यक्तियों के पर्यावरण में रहती है। किसी भी महिला का स्वयं के शोषण सम्बन्धी विचार इस बात पर निर्भर करेगा कि उसकी स्वयं की साहसपूर्वक इच्छा क्या है तथा चुनौतियों का सामना करने का वह कितना प्रयत्न करती है।

इस सैद्धान्तिक मॉडल में यह माना गया है कि महिला के प्रति अपराध व महिला का शोषण पाँच बातों पर निर्भर करता है :-

(1) सामाजिक पृष्ठभूमि (इसमें उसकी आयु, शैक्षिक स्तर और उसका प्रशिक्षण आदि है)

(2) समर्थन का स्तर (जो उसके माता-पिता, ससुराल वालों, सहेहिलयों और अन्य लोगों के समर्थन पर निर्भर करता है)

(3) दूसरों की अपेक्षाएँ (उसके पति, सास-ससुर, बच्चे, रिश्तेदार, काम के सहयोगी आदि सहित)

(4) आर्थिक आधार (वह निम्न, मध्यम या उच्च वर्ग से सम्बन्धित है)

(5) उसकी स्वयं की छवि (वह अपने को दयालु असहाय तथा कमज़ोर तथा साहसिक और बलवान समझती है)

विभिन्न सामाजिक विधानों का विवरण-

सामाजिक न्याय की धारणा मूल रूप से नवजागरण काल की इस मान्यता पर आधारित है कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुआ है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक दासिता प्राकृतिक नहीं अपितु व्यवस्था के नाम पर अल्पसंख्यक प्रभुत्व वर्ग द्वारा बहुसंख्यक कमजोर वर्ग पर थोपी गई है। तदनुसार, समाज के बहुसंख्य वंचित, शोषित, दलित और दलित लोग की मुक्ति ही सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य समाज के असहाय व कमजोर वर्गों के लोगों की परम्परागत सामाजिक-आर्थिक निर्योयताओं को दूर कर उन्हें शोषण भेदभाव एवं उत्पीड़न को परम्परागत बन्धन से मुक्त करना है।

सामाजिक न्याय की धारणा मौलिक अधिकार से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है किन्तु दोनों एक-दूसरे के पर्याय नहीं हैं। सामाजिक न्याय इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण भी है क्योंकि इसकी अवहेलना की दशा में मौलिक अधिकार का परिसीमन सम्भव है। उदाहरण के लिए स्वतन्त्रता, समानता, शोषण के विरुद्ध अधिकार आदि संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार है जो व्यक्ति के स्वतंत्र व स्वाभाविक विकास तथा न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक हैं किन्तु यदि इनकी या इनमें से किसी की स्वीकृति से सामाजिक न्याय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तो उसका परिसीमन जरूरी हो जाता है। सामाजिक न्याय का प्रश्न व्यक्ति के जीवन अस्तित्व से भी जुड़ा है। भोजन, वस्त्र एवं आवास व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकतायें हैं जो उसके अस्तित्व को बनाये रखने की दृष्टि से आवश्यक हैं।

सामाजिक न्याय की पहचान सामान्यतया स्वतन्त्रता, समानता तथा मानव व्यक्तित्व की गरिमा की रक्षा के आधार पर की जाती है। उपर्युक्त तीनों ही तत्व सामाजिक न्याय के लिए जरूरी हैं इनमें से किसी भी तत्व का अभाव सामाजिक न्याय का अभाव दर्शाता है। यहाँ तक स्वतन्त्रता एवं समानता को सामाजिक न्याय का आवश्यक तत्व मानने का प्रश्न है इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। मानव व्यक्ति की गरिमा को सम्भव है कुछ लोग सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक न माने व व्यक्तिव की गरिमा को स्वतन्त्र घटक न मानकर स्वतन्त्रता एवं समानता से व्युत्पन्न कह सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार यदि व्यक्ति को स्वतन्त्रता एवं समानता प्राप्त है तो उसके व्यक्तित्व की गरिमा समाज में स्वतः स्थापित हो जाती है, किन्तु यह सत्य नहीं है। सामान्यतः ऐसा होता है किन्तु सर्वदा नहीं। संविधान द्वारा स्वतन्त्रता एवं समानता के विशेष प्रावधानों के बावजूद एक अनुसूचित जाति के व्यक्ति को समाज में ब्राह्मण के समकक्ष स्थान प्राप्त नहीं है भले ही वह ब्राह्मण के समान विभित व सम्पन्न हो। इसी प्रकार भारत सहित विश्व के अन्य देशों में रंग व लिंग के आधार पर समाज में भेदभाव देखने को मिलता है। समाज में यदि व्यक्ति या समूह की गरिमा की न्यायपूर्ण रक्षा नहीं होती तो इससे समाज में उनके स्वतन्त्र एवं स्वाभाविक सम्मिश्रण की सम्भावना क्षीण हो जाती है और प्रदत्व जो सामाजिक न्याय का महत्वपूर्ण तत्व है, के विकास में बाधा पहुँचाती है।

डॉ. अम्बेडकर अध्ययनसायी, लेखक, प्रखर वक्ता, समाज वैज्ञानिक, संविधानविज्ञ, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ एवं कुणति प्रशासनिक आदि अनेक रूपों में जाने जाते हैं किन्तु उनकी पहचान सामाजिक न्याय पर आधारित आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में किया जाना अधिक वस्तुपरक एवं वास्तविक है। सामाजिक न्याय की स्थापना उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। यदि यह कहा जाये कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारत में अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रतीक हैं तो उसमें कोई

अतिश्योक्ति नहीं होगी। वे समाज में व्याप्त भेदभाव शोषण व अन्याय के विरुद्ध जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। उनके जीवन व कार्यों का लेखा जोखा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए सार्थक के इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

सामाजिक न्याय सम्बन्धी **डॉ. अम्बेडकर**[24] के योगदान को तीन उपवर्गों में विभक्त कर समझा जा सकता है।

(1) सामाजिक अन्याय की पहचान और उसके कारणों का वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अनुबन्धन।

(2) सामाजिक न्याय पर आधारित विधान की रचना और उसे प्रभावी बनाने की दृष्टि से संविधान में स्वतन्त्र न्याय पालिका का प्रावधान।

(3) सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए संघर्ष।

डॉ. अम्बेडकर (1987 : 25) स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का सामाजिक न्याय का पर्याय मानते थे। अतः उनकी दृष्टि से समाज में इन तत्वों का अभाव सामाजिक अन्याय का द्योतक है।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार नारी, शूद्र एवं दलित सहित भारतीय समाज का अधिकांश भाग सामाजिक अन्याय का शिकार था। ये वर्ग न केवल सामान्य सामाजिक एवं नागरिक अधिकारों से वंचित थे अपितु विभिन्न प्रकार की निर्योग्यताओं से पीड़ित भी थे। इनमें अस्पृश्यता के चलते दलितों की स्थिति सबसे खराब थी। वे पशु से भी गये बीते थे। इसके विपरीत द्विजों को विशेषाधिकार प्राप्त था किन्तु इनमें भी अधिकारों एवं सुविधाओं का वितरण न्यायपूर्ण नहीं था। ब्राह्मणों को सर्वाधिक अधिकार प्राप्त थे और उनकी स्थिति समाज में सबसे अच्छी थी। क्षत्रियों को उनसे कम अधिकार थे और उनकी स्थिति समाज में दूसरे क्रम पर थी। वैश्यों को इन दोनों वर्णों से कम अधिकार मिलते थे और उनकी समानता में स्थिति तीसरे क्रम पर थी। अधिकार व सुविधाओं का यह विभाजन पूर्व निश्चित व अपरिवर्तनीय था।

अपने अध्ययनों के आधार पर डॉ. अम्बेडकर ने परम्परागत हिन्दू समाज व्यवस्था को अन्यायपूर्ण निरूपित किया। यह दर्शाने के लिए एक तरफ उन्होंने समाज की रचना करने वाले आधारभूत नियमों या आचारसंहिताओं विशेष रूप से मनु के हिन्दू विधान, जिसे हिन्दू दैवी कानून माना है को जाँच का आधार बनाया तो दूसरी तरफ व्यवस्था के यथार्थ स्वरूप वर्ण एवं जाति को परीक्षण का मुद्दा बनाया और यह पाया कि हिन्दू समाज व्यवस्था एवं हिन्दू विधान दोनों ही सामाजिक न्याय की तीनों कसौटियों स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर खरी नहीं उतरती। परम्परागत भारतीय समाज में विद्यमान अन्याय की प्रकृति और इसके कारणों की व्यवस्था के उपरान्त डॉ. अम्बेडकर का निष्कर्ष था कि :

(1) हिन्दू वैचारिकी, हिन्दू विधान एवं हिन्दू समाज ने व्यक्ति के महत्व को स्वीकार नहीं किया है। इसने वर्णो (या जाति) को महत्व दिया है, व्यक्ति की अवहेलना की है।

(2) हिन्दू समाज में सामाजिक न्याय का अभाव इसलिए है क्योंकि इसका विधान समानता, स्वतन्त्रता एवं भाईचारे का निषेध करता है। यह असमानता, दासता और वर्ण (या जाति) भेद पर बल देता है।

(3) हिन्दू विधान लौकिक नहीं ईश्वरीय है। इसलिए इसमें परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है।

सामाजिक न्याय की स्थापना के प्रयास में अम्बेडकर ने सर्वप्रथम इन कमियों को दूर करने पर ध्यान दिया। उनका मानना था कि न्यायपूर्ण व्यवस्था न्यायपूर्ण विधान के बिना स्थापित नहीं हो सकती। संविधान के द्वारा उन्होंने न्यायपूर्ण व्यवस्था की आधारशिला रखी जिसके तहत एक तो उन्होंने व्यक्ति की गरिमा की रक्षा के लिए आवश्यक उपबन्ध दिये और दूसरे जिन वर्गों के साथ सदियों से अन्याय होता रहा है उनकी निर्योग्यताओं को दूर किया। परम्परागत हिन्दू विधान ने नारी को न केवल

पुरुषों के समान अधिकारों से वंचित किया था अपितु उन पर अनेक निर्योग्यताएँ भी थोपीं थी। संविधान ने नारी की निर्योग्यताओं को समाप्त किया और उसे पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये। संविधान का अनुच्छेद 14 नारी को पुरुष के समान दर्जा प्रदान करता है तथा समान कार्य के लिए उसे पुरुषों के समान पारिश्रमिक प्रदान किये जाने का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 15(1) के द्वारा लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त किया गया।

अध्ययन समस्या का प्रस्तुतीकरण-

सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुआयामी है। इसे निश्चित शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता है जो आज समाज के लिए सही है वह समाज की बदलती हुई परिस्थिति में गलत भी हो सकता है, यह एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है। सामाजिक न्याय का अर्थ समाज में सभी व्यक्तियों को समानता के साथ जीवन व्यतीत करने के समान अवसर उपलब्ध कराना है। सामाजिक न्याय की प्राप्ति स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व के समन्वय से ही प्राप्त की जा सकती है। सामाजिक न्याय व्यक्ति को विश्वास प्रदान करता है कि किसी भी अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूलभूत अनिवार्य आवश्यकताओं तथा भोजन, वस्त्र एवं मकान की पूर्ति हो प्रत्येक व्यक्ति को विकास का उचित अवसर प्राप्त हो। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को रोका जाये और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।

नारियों को सामाजिक न्याय स्वयं ही प्राप्त करना होगा। समाज में ऐसा वातावरण पैदा करना होगा जहाँ से आम आदमी की सोच में बदलाव आये। इसके लिए महिलाओं के अन्दर ही एक शक्तिशाली गतिशील और वृहत सामाजिक चेतना जागृत करनी होगी, जिससे वे सहभागी सहकारिता के आधार पर आगे एक नये क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम बने और आने वाले समय में मानव का भविष्य स्वर्णिम बन सके।

अनेक महिला संगठन पिछले एक दशक से नारियों को उत्पीड़न से बचाने के लिए अनेकानेक प्रयास कर रहे हैं, जिससे विश्व समाज का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ है। मौलिक अधिकारों को पाने का भी प्रयास किया गया है।

भारत सरकार ने महिलाओं में सामाजिक न्याय हेतु सामाजिक बराबरी, सशक्तिकरण एवं विकास के अनेक उपाय किये हैं वह निम्न हैं:-

(क) स्वयंसिद्धा

(ख) महिलाओं के लिए प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम

(ग) स्वावलम्बन योजना

(घ) कामकाजी महिला हॉस्टल

(ङ) स्वाधार योजना

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) प्रभु, पी.एच. : हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, पेज 66

(2) अल्तेकर, ए.एस. : हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डिया, पेज 15

(3) बौधायन : महिलाओं से सम्बन्धित वैवाहिक विधान

(4) मेघातिथि : माता की कर्त्तव्य परायणता

(5) ईस्ट इण्डिया कम्पनी (1813) : सभी वर्गों में शिक्षा प्रसार

(6) राजा राममोहन राय (1875) : ब्रह्म समाज की स्थापना

(7) महर्षि दयानन्द (1875): आर्य समाज की स्थापना

(8) रानाडे और ऐनी बेसेण्ट (1929) : अखिल भारतीय महिला संगठन

(9) मजूमदार तथा मदान : एन इन्ट्रोडक्शन टू सोसल एन्थ्रोपोलॉजी, पेज 50

(10) मैक्सबेबर : जाति एक बन्द प्रस्थिति समूह है।

(11) दत्त, एन.के. : ऑरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया, पेज 2

(12) डॉ. घुरिये, जी.एस. : कास्ट, क्लास एण्ड ऑकूपेसन, पेज 159-177

(13) मैकाइवर : सोसाइटी, पेज 228

(14) मैकाइवर और पेज : सोसाइटी, पेज 228-229

(15) लूसी मेयर : एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलॉजी, पेज 82

(16) वेस्टरमार्क : दी हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज बॉल्यूम 1, पेज 26

(17) व्होरा, आशारानी (1982) : भारतीय ग्रामीण महिलाओं की प्रस्थिति

(18) कपाड़िया, के.एम. (1958) : भारत में विवाह एवं परिवार, पेज 53

(19) कौर, एम. (1968) : महिलाओं की राजनीतिक प्रस्थिति एवं उनकी सहभागिता

(20) लट्टा, ललिता (2001) : महिला विकास योजनाएं और क्रियान्वयन

(21) आनन्द, निर्मल कुमार (2007) : पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएं

(22) पई सुधा (2000) : न्यू सोशल एण्ड पॉल्टीकल मूमेन्ट्स ऑफ दलिताज

(23) पदमा, बेलाश्कर (1994) : लिटरेसी फॉर बूमेन एडाप्टेशन और एमपॉवरमेन्ट

(24) डॉ. अम्बेडकर : सामाजिक न्याय की स्थापना

❖❖❖❖❖

अध्याय - 2

अध्ययन पद्धति शास्त्र :

- शोध प्रारचना का निरूपण
- तथ्यों के संचयन की विधियाँ
- अध्ययन इकाईयों के प्रतिचयन की विधियाँ
- अध्ययन-क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय
- अध्ययन इकाईयों का प्रतिचयन
- अध्ययन में प्रयुक्त चर एवं सम्प्रत्यय

अध्ययन पद्धति शास्त्र-

मानव के क्रियात्मक क्षेत्रों में सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य सामाजिक जीवन के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। किसी वर्ग की समस्त प्रक्रियाओं, परिवर्तनों एवं गति को समझने विश्लेषित करने तथा सामान्यीकरण करने हेतु प्रत्येक शोधकर्ता को यह समझ लेना अवश्यक है कि वह सामाजिक घटनाओं को समझें इन क्रियाओं, गतिविधियों एवं परिवर्तनों को समझने उनमें रूचि रखने का तात्पर्य यही है कि मानव व्यवहार एवं सामाजिकता के विषय में सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके। एक सामाजिक शोधकर्ता इसी उद्देश्य से सम्बन्धित रहता है; तथा वैज्ञानिक पद्धति से सामाजिक जीवन में ज्ञान प्राप्त करता है एवं मानव व्यवहार के बारे में प्राप्त तथ्यों के आधार पर सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं से अन्तः सम्बद्ध प्रक्रियाओं की व्यवस्थित खोज तथा विश्लेषण की एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस अर्थ में सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है। विज्ञान का सम्बन्ध वास्तविक ज्ञान से होता है जो कि एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करता है। ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान की वृद्धि तथा ज्ञान की पुनः परीक्षण को अपना लक्ष्य मानकर यह सदा क्रियाशील रहता है। यद्यपि व्यावहारिक लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में इसका कुछ योगदान रहता है पर वह आकस्मिक होता है न कि उद्देश्यपूर्ण। एक वैज्ञानिक पद्धति होने के नाते सामाजिक शोध निरीक्षण तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण व निष्कर्षीकरण की व्यवस्थित विधि को अपनाता है। दूसरे

शब्दों में वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक शोध की प्रवृत्ति की एक और उल्लेखनीय विशेषता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति यह भी है कि शोध केवल नवीन तथ्यों या घटनाओं के सम्बन्ध में खोज करके ही चुप नहीं बैठ जाता अपितु पुराने तथ्यों से सम्बद्ध अनुसंधान में भी रुचि रखता है। यह इसकी मान्यता है कि केवल नवीन तथ्यों के विषय में अध्ययन करना अथवा विद्यमान पुराने निष्कर्षों को सत्य मान लेना ही पर्याप्त नहीं है अपितु पुराने निष्कर्षों की पुनः परीक्षा पर सामाजिक शोध के दो कारणों को बल प्रदान करता है। प्रथम तो यह है कि अनुसंधान की प्रविधियों में अनेक नये सुधार होते जा रहे हैं इसीलिए यह आवश्यक है कि नवीनतम प्रविधियों की सहायता से पुराने सिद्धान्त या सामाजिक घटनाओं की फिर से जाँच की जाये जिससे की यह ज्ञात हो सके कि वह अब भी सही है या नहीं। दूसरी बात यह है कि सामाजिक जीवन व उससे सम्बद्ध घटनाएँ भी परिवर्तनशील हैं और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन तेजी से होते जा रहे हैं पुराने तथ्यों, घटनाओं और सिद्धान्तों में सामाजिक शोध की यह रुचि उसकी प्रकृति के एक महत्वपूर्ण पक्ष को उद्‌घाटित करती है।

सामाजिक शोध की प्रकृति के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह है कि सामाजिक जीवन या घटनाओं पर अधिकाधिक नियंत्रण पाने का प्रयत्न करता है। यहाँ नियंत्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को डरा धमकाकर अपने वश में कर लेना है अपितु नियंत्रण का तात्पर्य यह है कि अपने अनुसंधान कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करके उसी प्रकार की अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखा है। इस प्रकार का नियंत्रण विषय के सम्बन्ध में शोधकर्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान व तद् द्वारा उन पर अधिक नियंत्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

एक शोधकर्ता को निम्नलिखित पक्षों का भी संज्ञान होना चाहिए।

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसूचित जाति महिलाओं की सामाजिक न्याय के प्रति दृष्टिकोण जानने का प्रयास किया गया है। झाँसी जनपद में रहने वाली अनुसूचित जातीय महिलाओं की शैक्षिक स्तर, आयु भिन्नता, सामाजिक-आर्थिक दशा आदि के आधार पर यह जानने का प्रयास किया गया है कि ये महिलाएँ कहाँ तक परम्परागत न्याय व्यवस्था को प्रासंगिक मानती हैं तथा वे कौन से कारक हैं जो परम्परागत न्याय व्यवस्था में इन महिलाओं के पक्ष में सुधार के लिए उत्तरदायी हैं।

(१) शोध-प्ररचना का निरुपण-

प्रस्तुत शोध प्रकल्प वैज्ञानिक विधियों पर आधारित एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण है, यही वैज्ञानिक प्रविधि प्रस्तुत शोध की विषय वस्तु को विश्लेषित करने की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में देखी जाती है। किसी भी शोध में यदि वैज्ञानिक नियमों को नकार दिया जाये तो शोध अध्ययन को सही निर्देशन की दिशा नहीं मिल पायेगी। ऐसी स्थिति में अध्ययन वांछित लक्ष्य से दूर हो जायेगा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में आज जो भी अनुसंधान हो रहे हैं वे मुख्य रूप से तर्क, वस्तुनिष्ठ, समाजशास्त्रीय मान्यताओं तथा उपकल्पनात्मक विवेचना की शक्ति पर टिके हुए हैं। शोध में वैज्ञानिक पद्धति उन प्रविधियों एवं यंत्रों की सार्थकता को सिद्ध करती हैं, जो ज्ञान को सृजनात्मक शक्ति प्रदान करते हैं, जो शोध की सही उपलब्धि होती है। वैज्ञानिक अध्ययन-पद्धति अपने लक्ष्य को पाने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण, प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति, पूर्ववर्ती शोधों की समीक्षा तथा प्रक्षेपीय विधि के माध्यम से तथ्य संकलन को सार्थक मानती है। यही कारण है कि अनुसंधान के प्रमुख चरणों में वैज्ञानिक विधियों की अनिवार्यता और आवश्यकता को शोध की यथार्थता के लिए अनिवार्य कड़ी स्वीकार करती है।

मानव की क्रियाओं के क्षेत्र में सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य उसके

सामाजिक जीवन के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। किसी वर्ग की समस्त प्रक्रियाओं, परिवर्तनों एवं गति को समझने के लिए उसका विश्लेषण एवं सामान्यीकरण करने हेतु प्रत्येक अनुसंधानकर्ता को यह जानना अति आवश्यक है कि वह सामाजिक घटनाओं, समूहों एवं मानवीय व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों तथा गतिविधियों को समझें। तथा मानव व्यवहार तथा सामाजिक व्यवहार के विषय में कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके। एक सामाजिक अनुसंधानकर्ता इसी उद्देश्य से सम्बन्धित रहता है। सामाजिक अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से सामाजिक जीवन से ज्ञान प्राप्त करता है एवं तत्पश्चात् मानव व्यवहार के बारे में प्राप्त तथ्यों के आधार पर कुल सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करता है।

वस्तुतः सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक है। सामाजिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं से अन्तः सम्बद्ध प्रक्रियाओं की व्यवस्थित खोज तथा विश्लेषण की एक वैज्ञानिक पद्धति है। सामाजिक जीवन को समझना इसका प्रमुख कार्य है जिसे अनुसंधानकर्ता ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से करता है। यद्यपि व्यवहारिक लक्ष्यों की पूर्ति की दिशाा में इसका कुछ योगदान रहता है पर यह आकस्मिक होता है न कि उद्देश्य पूर्ण।

एक वैज्ञानिक पद्धति होने के नाते सामाजिक अनुसंधान निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण एवं निष्कर्ष की व्यवस्थित पद्धति से गुजरता है तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति की एक और उल्लेखनीय विशेषता है। इससे भी इसकी वैज्ञानिक प्रकृति का स्पष्टीकरण होता है। जी.एन.पी. श्रीवास्तव[1]

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति यह भी है कि यह मात्र नवीन तथ्यों या घटनाओं के विषय में खोज ही नहीं करता अपितु पुराने तथ्यों से सम्बन्द्ध अनुसंधान में भी रूचि रखता है। उसकी मान्यता है कि केवल नवीन तथ्यों के विषय में अध्ययन

करना अथवा विद्यमान पुराने निष्कर्षों को ही सच मान लेना काफी नहीं है। अपितु पुराने निष्कर्षों की पुनः परीक्षा पर साामाजिक अनुसंधान दो कारणों से बल देता है प्रथम यह कि शोध की प्रविधियों में अनेक नये सुधार होते जा रहे हैं इसलिए यह अति आवश्यक है कि नवीन प्रविधियों की सहायता से पुराने सिद्धान्त या सामाजिक घटनाओं की फिर से जाँच की जाये जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे वर्तमान में प्रासंगिक है या नहीं। दूसरे, यह कि सामाजिक जीवन व उससे सम्बद्ध घटनायें भी परिवर्तनशील हैं और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन भी तीव्रता से होते जा रहे हैं। पुराने तथ्यों, घटनाओं और सिद्धान्तों में सामाजिक शोध की यह रूचि उसकी प्रकृति के एक महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित करती है।

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति यह भी है कि यह सामाजिक जीवन या घटनाओं पर अधिकाधिक नियंत्रण पाने का प्रयास करता है। यहाँ नियंत्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को भयभीत करके अपने वश में कर लिया जाये। यहाँ नियंत्रण से तात्पर्य है कि अपने शोध कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करके उसी प्रकार की अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभाव को दृष्टिगत किया जाये। इस प्रकार का नियंत्रण विषय के सम्बन्ध में शोधकर्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान व तद्नुसार उन पर अधिक नियंत्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

किसी भी शोधकार्य में कार्य करने की योजना का अनुसंधान प्रक्रिया की रूपरेखा का ही शोध अभिकल्प कहा जाता है। किसी भी सामाजिक अनुसंधान में शोध की समस्या एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए ही शोध अभिकल्प का निर्माण किया जाता है। शोध अभिकल्प का प्रमुख कार्य अनुसंधान को एक निश्चित दिशा प्रदान करना है। किस प्रकार के तथ्यों का संकलन करना होता है उसी प्रकार के शोध

अभिकल्प का चयन करना पड़ता है। इस प्रकार शोध अभिवन्य तथा संकलन की पद्धतियों एवं विधियों की त्रुटियों को कम करने में शोधकर्ता के श्रम की बचत करते हैं।

थामस[3] के अनुसार- शोध अभिकल्प निर्माण करने की वह प्रक्रिया है जो उन परिस्थितियों के पूर्व किये जाते हैं जिनमें वे निर्णय कार्य रूप में लाये जाते हैं। यह एक सम्भावित स्थिति को नियंत्रित करने की दिशा में जानबूझकर पूर्व योजना की प्रक्रिया है। अतः स्पष्ट है कि यह पूर्ण निर्णय की वह प्रक्रिया है जो अनुसंधान में आगे आने वाली परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए की जाती है। इस प्रकार शोध अभिकल्प अध्ययन पद्धतियों की प्ररचना से सम्बन्धित होती है।

सेल्टिज, जहोदा एण्ड अवर्स के अनुसार- अनुसंधान अभिकल्प तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण के लिए विभिन्न अवस्थाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करने की योजना है कि कार्यवाही की न्यूनता एवं मितव्ययिता के साथ अर्थात कम समय और कम खर्च में अनुसंधान उद्देश्यों की पूर्ति हो जाये और आवश्यक तथ्य उपलब्ध हो जायें। इसलिए निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक अनुसंधान कुछ निश्चित उद्देश्यों को लेकर प्रारम्भ होता है जिसकी प्राप्ति के लिए विभिन्न योजनाएँ पूर्व में ही बना ली जायें। इस प्रकार अनुसंधान उद्देश्यों के आधार पर निर्मित की गयी शोध योजना ही शोध अभिकल्प कहलाता है।

विभिन्न अनुसंधान अभिकल्पों को अनेक आधार पर वर्गीकृत किया गया है। सामान्यतः अनुसंधान का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है :-

(अ) अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर

(ब) अध्ययन के उपागम के आधार पर

(अ) <u>अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर-</u>

(क) अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प

(ख) विवरणात्मक या निदानात्मक शोध अभिकल्प

(ग) प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प

(घ मूल्यांकनात्मक शोध अभिकल्प

(ङ) विश्लेषणात्मक शोध अभिकल्प

(ब) अध्ययन के उपागम के आधार पर-

(क) सर्वेक्षणात्मक शोध अभिकल्प

(ख) क्षेत्र अध्ययन सम्बन्धी शोध अभिकल्प

(ग) प्रयोग सम्बन्धी शोध अभिकल्प

(घ ऐतिहासिक शोध अभिकल्प

(ङ) वैयक्तिक अध्ययन सम्बन्धी शोध अभिकल्प

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता का प्रमुख उद्देश्य झाँसी जनपद की अनुसूचित जाति महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्याय व्यवस्था एवं वैधानिक प्राविधानों की प्रासंगिकता का समाजशास्त्रीय निरूपण करना है। जिसके सम्बन्ध में वर्ममान ज्ञान की दशा सीमित है। अनुसूचित जाति महिलाओं की समस्यायें इतनी जटिल हैं कि उनके सम्बन्ध में सूचना एकत्र करना अत्यंत ही मुश्किल कार्य है। चूँकि शोधकर्ता का उद्देश्य सम्बन्धित साहित्य एवं प्राथमिक खोजों पर आधारित ज्ञान द्वारा प्राप्त तथ्यों का निरूपण करना है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोधकर्ता द्वारा अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध अभिकल्प सामाजिक अनुसंधान में प्रयुक्त होने वाला वह अभिकल्प है जिसका प्रयोग अज्ञात तथ्यों अथवा ऐसे तथ्यों की खोज करने के लिए किया जाता है जिसके सम्बन्ध में सीमित ज्ञान हो। यह शोध अभिकल्प नवीन तथ्यों की खोज से सम्बन्ध रखता है। **सेल्टिज, जहोदा एण्ड अदर्स के अनुसार**- अन्वेषणात्मक अनुसंधान अनुभव, जो कि सम्बन्धित उपकल्पनाओं के निर्माण में सहायक होगा जिससे सुनिश्चित खोज की जा सकेगी, के लिए आवश्यक है।

अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प अथवा निरूपणात्मक शोध अभिकल्प के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य होते हैं:-

(1) अनुसंधान कार्य के प्रारूप को एक आधारशिला प्रदान करना।

(2) तात्कालिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में सूचनायें प्रदान करना।

(3) अध्ययन समस्याओं के महत्व को दर्शाना।

(4) अनिश्चित समस्याओं को निश्चितता प्रदान करना।

(5) नवीन उपकल्पनाएँ प्रदान करना।

(6) नवीन अध्ययन पद्धतियों को प्रस्तुत करके व्यावहारिक सम्भावनाओं को स्पष्ट करना।

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध में अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध अभिकल्प का निर्माण किया गया है।

(२) तथ्य संचयन की विधियाँ-

शोध कार्य से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के लिए निम्नलिखित विधियों को प्रयोग में लाया गया है।

(क) साक्षात्कार-अनुसूची-

अनुसूची तथ्य संकलन की एक प्रमुख प्रक्रिया है संक्षेप में अनुसूची वह प्रपत्र है जिसमें विषय से सम्बन्धित प्रश्न लिखे होते हैं तथा शोधकर्ता सूचनादाताओं से उन प्रश्नों को उत्तर पूछ कर लिखता है। अनुसूची का निर्माण अनुसंधानकर्ता अध्ययन विषय की प्रकृति के अनुरूप ही करता है। इस प्रकार यह विधि तथ्य एकत्रित करने में उपयोगी है।

गुडे एवं हॉट[4] *के अनुसार-* अनुसूची साधारणतः उन प्रश्नों के एक समूह का नाम है जो एक साक्षात्कारकर्ता के द्वारा दूसरे व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछे एवं भरे जाते हैं।"

थामस[5] का मानना है कि अनुसूची प्रश्नों की एक सूची से अधिक कुछ नहीं है जिसका उपकल्पनाओं के परीक्षण के लिए उत्तर देना आवश्यक होता है।

(ख) साक्षात्कार-

साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान में तथ्य संकलन हेतु प्रयोग में लायी जाने वाली सबसे अधिक प्रचलित विधि है। इस प्रविधि में आपस में बातचीत एवं आमने-सामने के सम्बन्ध के आधार पर मनुष्य की भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं मूल्यों आदि के विषय में अधिक से अधिक जाना जा सकता है। इस प्रविधि में शोधकर्ता सूचनादाता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है। शोधकर्ता घटना या समस्या के बारे में उत्तरदाता से अनौपचारिक वार्ता करता है। तथा सूचनादाताओं की प्रतिक्रियाओं, विचारों को सुनकर तथ्य एकत्रित करता है।

पी.वी. यंग[2] के अनुसार- साक्षात्कार को एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में माना जा सकता है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में अधिक या कम काल्पनिक रूप से प्रवेश करता है। जो कि उसके लिए तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।

गुडे एवं हॉट के अनुसरण- ''साक्षात्कार मूल रूप से एक सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रक्रिया है।''

(३) अध्ययन इकाइयों के प्रतिचयन की विधियाँ-

(क) दैवनिदर्शन-

दैवनिदर्शन पद्धति से तात्पर्य उस निदर्शन से है जो कि मानव की अपनी इच्छाओं से नहीं अपितु संयोग से चुना जाये। इस निदर्शन पद्धति में समग्र इकाईयों को चुनने के लिए समान अवसर प्रदान किये जाते हैं जिससे कि शोधकर्ता द्वारा इकाईयों के पक्षपातपूर्ण चुनाव के दोष को दूर किया जा सके। दैवनिदर्शन को परिभाषित करते हुए गुडे एवं हॉट का मानना है कि दैव निदर्शन में समग्र इकाइयों

को इस प्रकार क्रमवद्ध किया जाता है कि चयन प्रक्रिया उस समय तक की प्रत्येक इकाई को चुनाव की समान सम्भाव्यता प्रदान करती है।

(ख) <u>सविचार निदर्शन</u>-

जब शोधकर्ता जानबूझकर किसी विशिष्ट उद्देश्य से समग्र में से अध्ययन हेतु कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन कहते हैं। इस प्रकार के चुनाव में चयनकर्ता की इच्छा, उसका निर्णय तथा उद्देश्य ही मुख्य होता है। इस प्रक्रिया का मुख्य आधार यह है कि शोधकर्ता पहले से ही समग्र की इकाइयों के विषय में परिचित होता है। *एडील्फजान्स* के शब्दों में सविचार निदर्शन से तात्पर्य इकाइयों के समूहों को इस प्रकार चुनने से है कि चुने हुए का मिलकर जहाँ तक हो सके वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करे जो समग्र में है।

(ग) <u>प्राथमिक समंक/स्रोत</u>-

प्राथमिक समंक वे भौतिक तथ्य अथवा सूचनाएँ होते हैं जिन्हें एक शोधकर्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र में जाकर जीवित व्यक्तियों से किसी भी मान्य तकनीक द्वारा (प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, अवलोकन आदि) एकत्र किया जाता है। शोधकर्ता प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा जो कुछ देखता एवं सुनता है और सूचनादाता जो कुछ बताता है या लिखित रूप से प्रश्नों के उत्तर के रूप में जो कुछ लिखकर देता है, वही प्राथमिक समंक एवं प्रयुक्त तकनीक को प्राथमिक स्रोत के रूप में संबोधित किया जाता है।

(घ) <u>द्वैतीयक समंक/स्रोत</u>-

द्वैतीयक समंक वे सूचनाएँ और आँकड़े होते हैं जो कि शोधकर्ता की प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्ट, सांख्यिकीय प्रतिवेदन, पाण्डुलिपि पत्र- पत्रिकाएँ, डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वैतीयक तथ्य, सूचना या आँकड़े स्वयं शोधकर्ता अपने अनुसंधान कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्रित कर लेता है। द्वैतीयक तथ्यों के भी दो प्रमुख स्रोत होते हैं। एक तो व्यक्तिगत प्रलेख जैसे- रिकार्ड, पुस्तकें, जनगणना

रिपोर्ट, विशिष्ट कमेटियों की वार्षिक, अर्द्धवार्षिक रिपोर्ट, समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचनाएँ आदि। दूसरे लुण्डवर्ग के अनुसार शिलालेख, स्तूप, विभिन्न इकाइयों से प्राप्त अभियंत्रित भौतिक वस्तुएँ आदि ऐतिहासिक स्रोत से प्राप्त तथ्य की सूचनाएँ भी द्वैतीयक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं।

(४) अध्ययन-क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय-

झाँसी नगर पहुंज तथा बेतवा नदियों के मध्य अवस्थित है, यहं नगर बहादुरी, साहस तथा आत्म-सम्मान का प्रतीक रहा है। प्राचीन काल में यह नगर चेदिराष्ट्र, तेजकमुक्ति, जाजहोति और बुन्देलखण्ड का अंग रहा है। चन्देल राजाओं का झाँसी पर मजबूत अधिपत्य रहा है। इस नगर को बलवन्त नागर ने महत्व प्रदान किया था किन्तु 11 वीं शताब्दी में इस नगर ने अपना महत्व खो दिया था। परन्तु 17 वीं शताब्दी में ओरछा राजा वीरसिंह देव के नेतृत्व में यह नगर पुनः अपनी खोई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ। राजा वीरसिंह देव के मुगल सम्राट जहाँगीर से मधुर सम्बन्ध थे। 1613 में इसी राजा ने झाँसी किले का निर्माण कराया।

पन्ना के महाराजा छत्रसाल बुन्देला एक कुशल एवं बहादुर प्रशासक थे 1729 में मौहम्मद खान बान्गेश छत्रसाल पर आक्रमण किया। इस युद्ध में पेशवा बाजीराव की मद्द से महाराजा छत्रसाल ने मुगल सेना को परास्त किया। जिसके बदले महाराजा छात्रसाल ने झाँसी नगर समेत राज्य के एक भाग को मराठा पेशवा बाजीराव को उपहार स्वरूप प्रदान किया।

1742 में नारोशंकर झाँसी के सूबेदार बने। 13 वर्ष के अपने कार्यकाल में नारोशंकर ने न केवल सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण झाँसी किले का विस्तार किया अपितु कुछ नये भवनों का भी निर्माण कराया किले का विस्तृत भाग शंकरगढ़ कहलाया। 1757 में नारोशंकर पेशवा द्वारा वापस बुला लिया गया। उसके उपरान्त माधव गोविन्द किकर्डे एवं बाबूलाल कन्हाई झाँसी के सूबेदार नियुक्त हुए।

1766 में विश्वास राव लक्ष्मण झाँसी के सूबेदार बनाये गये। 1766 से 1769 तक उन्होंने झाँसी पर राज्य किया उसके उपरान्त रघुनाथ राव II नवेलकर झाँसी का सूबेदार नियुक्त हुआ। रघुनाथ राव II कुशल प्रशासक थे। उन्होंने राज्य की आय को खूब बढ़ाया। इन्होंने महालक्ष्मी मन्दिर तथा रघुनाथ मन्दिर का झाँसी नगर में निर्माण कराया। 1796 में रघुनाथ राव ने अपने भाई शिवराव हरी के लिए सूबेदारी छोड़ दी।

1803 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा मराठों के बीच समझौता किया गया। शिवराव की मृत्यु के उपरान्त उसका पोता रामचन्द्र राव झाँसी का सूबेदार बना वह सुयोग्य प्रशासक साबित नहीं हुआ, 1835 में उसकी मृत्यु के उपरान्त रघुनाथ राव III सूबेदार नियुक्त हुआ। 1838 में रघुनाथ राव की मृत्यु के उपरान्त ब्रिटिश शासकों ने गंगाधर राव को झाँसी के राजा के रूप में स्वीकृति प्रदान की। इस बीच शासकों के कुप्रबन्ध के कारण झाँसी की वित्तीय स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी। किन्तु राजा गंगाधर राव एक सुयोग्य शासक साबित हुआ उसके राज्य के नागरिक उससे संतुष्ट थे। 1842 में राजा गंगाधर राव का मणिकर्णिका नामक महिला से विवाह हुआ विवाहोपरांत यही महिला लक्ष्मीबाई के नाम से जानी गयी जिसने 1857 में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ सेना का नेतृत्व किया। भारत की स्वाधीनता के लिए 1858 में रानी लक्ष्मीबाई ने अपना बलिदान दिया।

1861 में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने झाँसी किला तथा झाँसी नगर जीवाजीराव सिंधिया को सुपुर्द कर दिया जिससे झाँसी अब ग्वालियर राज्य का अंग बन गया। किन्तु 1886 में एक बार फिर ब्रिटिश शासकों ने झाँसी को ग्वालियर राज्य से वापस ले लिया।

झाँसी नगर उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अवस्थित है इस मण्डल के अन्तर्गत झाँसी, ललितपुर तथा जालौन जनपद सम्मिलित हैं। जो राज्य का सर्वाधिक पिछड़ा क्षेत्र समझा जाता है। प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण किन्तु विकास से कोसों दूर

इस क्षेत्र में गरीबी भूखमरी यहाँ के लोगों की नियति बनी हुई है जिसके लिए गैर सरकारी संगठन तथा केन्द्रिय एवं प्रान्तीय सरकारें समय-समय पर अपनी चिन्ता व्यक्त करती रहती हैं। इसके बावजूद भी अभी तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र के समग्र विकास के लिए अब तक कोई सार्थक पहल नहीं हुई।

झाँसी जनपद का सृजन 1856 में हुआ तथा झाँसी, मण्डल का यह प्रमुख नगर हैं। यह जनपद 25^0,10' 20" से 26^0, 00' उत्तरी अक्षांशों तथा 78^0, 12' 30" से 79^0, 15' 25" पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है।

इस जनपद की उत्तरी सीमा पर जालौन जनपद, दक्षिणी सीमा पर ललितपुर जनपद, पश्चिमी सीमा पर मध्य प्रदेश राज्य के दतिया एवं शिवपुरी जनपद, तथा पूर्वी सीमा पर हमीरपुर एवं महोबा जनपद की सीमाएँ हैं।

क्षेत्रफल एवं जनसंख्या-

जनपद झाँसी का क्षेत्रफल 5024 वर्ग किमी. है तथा वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 17,46,715 व्यक्ति है जिसमें 9,34,118 पुरुष तथा 8,12,597 स्त्रियाँ हैं। जनपद का जनसंख्या घनत्व 348 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है तथा साक्षरता 66.06 प्रतिशत है।

तहसील एवं विकास खण्ड-

जनपद में 5 तहसीलें- झाँसी, मोठ, मऊरानीपुर, गरौठा तथा तहरोली हैं तथा विकास खण्डों की संख्या 8 चिरगाँव, गुरुसराय, बामौर, बंगरा, बवीना, बड़ागाँव, मोठ तथा मऊरानीपुर स्थिति हैं।

जनपद का मुख्यालय झाँसी नगर है तथा झाँसी तहसील का मुख्यालय भी झाँसी में है। मोठ तहसील का मुख्यालय मोठ में, मऊरानीपुर तहसील का मुख्यालय मऊरानीपुर, तहरोली तहसील का मुख्यालय तहरोली में है। इसी प्रकार चिरगाँव विकास खण्ड का मुख्यालय गुरुसराय, बामौर विकास खण्ड का मुख्यालय बामौर,

बंगरा विकास खण्ड का मुख्यालय बंगरा, बवीना विकास खण्ड का मुख्यालय बवीना, बड़ागाँव विकास खण्ड का मुख्यालय बड़ागाँव, मोठ विकास खण्ड का मुख्यालय मोठ तथा मऊरानीपुर विकास खण्ड का मुख्यालय मऊरानीपुर में स्थिति हैं। जनपद में कुल आबाद ग्रामों की संख्या 837 है।

इन ग्रामों में विभिन्न प्रकार की जाति के लोग डोम, चमार, खटिक, पासी, धोबी, कुम्हार बहेलिया, बॉसफार आदि जातियाँ अनुसूचित जाति समूह के रूप में निवास करती हैं जो मुख्यतः सफाई, भूमिहीन श्रमिक, फल सब्जी विक्रेता, पत्थर तोड़ने वाले मजदूर आदि व्यवसाय करते हैं।

(५) अध्ययन इकाइयों का प्रतिचयन-

वर्तमान शोध कार्य का समग्र उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड मण्डल का झाँसी जनपद है। इसके अन्तर्गत रहने वाली अनुसूचित जाति महिलाएँ समग्र के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। झाँसी जनपद के अन्तर्गत झाँसी नगर के अतिरिक्त 8 सामुदायिक विकास खण्ड सम्मिलित हैं।

अतः इन सभी विकास खण्डों में रहने वाली समस्त अनुसूचित जाति महिलाओं को समग्र के अन्तर्गत रखा गया है। इस अध्ययन में अनुसूचित जाति महिलाओं में विभिन्न आयु समूहों, शिक्षा स्तर, आर्थिक स्थिति की महिलाओं को शोधकार्य में शामिल किया गया है।

प्रतिदर्श-

सामाजिक शोधकार्य को तथ्य मूलक एवं तर्क संगत बनाने की दिशा में निदर्श या प्रतिदर्श (सैम्पल) की उपयोगिता किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में देखी गयी है। यह प्रविधि शोध समस्याओं की वैज्ञानिक तथा तथ्य मूलक विवेचन करने में एक स्वतन्त्र अर्न्तदृष्टि विश्लेषण प्रस्तुत करती है जिसके आधार पर शोध की सार्थकता को प्रमाणित किया जा सकता है। इस प्रकार समस्याओं

से बँधे सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र को सरल एवं सुगम बनाने में यह प्रणाली बहुत ही महत्वपूर्ण एवं अधिक से अधिक परिणामों को देने वाली अनिवार्य प्रविधि है। ऐसी स्थिति में यह प्रविधि कम समय में अधिक से अधिक व्यक्तियों द्वारा वांछित तथ्य को प्राप्त करने में सफल दिखलाई देती है। *बोगार्डस*[13] की मान्यता है कि निदर्शन पद्धति एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार इकाईयों का एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है। ये चुनी हुई इकाईयाँ पूरे क्षेत्र में बहु आयामी प्रक्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।

सामाजिक शोधकार्य किसी एक या दो व्यक्तियों पर नहीं किये जाते हैं बल्कि इसके अन्तर्गत विभिन्न समूहों का अध्ययन किया जाता है। किसी भी परिभाषित समूह में अनेक सदस्य होते हैं जिसका अध्ययन व्यावहारिक दृष्टि से काफी कठिन होता है। ऐसी स्थिति में समाजशास्त्रियों ने बड़े समूह के अध्ययन के लिए प्रतिचयन प्रणाली या निदर्शन प्रणाली का प्रयोग उचित समझा है। उन्होंने प्रतिचयन की कुछ वैज्ञानिक विधियों का विकास किया है जिसके माध्यम से किसी समूह में ऐसे प्रतिचयनका प्रतिदर्श का निर्माण किया जा सकता है जो उस समूह के सदस्यों का समुचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

सामान्यतः प्रतिदर्श एक बड़ी जनसंख्या या समग्र का छोटा प्रतिनिधि होता है जिसमें उस समग्र की सभी विशेषताएँ मौजूद रहती हैं। *एटकिंसन एटल* ने प्रतिदर्श को परिभाषित करते हुए लिखा है कि प्रतिदर्श का अर्थ प्राप्तांकों के सम्पूर्ण सेट जिसे जनसंख्या कहते हैं से किये गये प्राप्तांकों के अंश से है। *चेम्बरलिस के अनुसार*- प्रतिदर्श चुना हुआ अंश है जो सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व करता है। *पी.वी. यंग* ने लिखा है कि ''प्रतिदर्श का चुनाव बड़ा नहीं बल्कि छोटा होना चाहिए। यह इतना संगठित होना चाहिए कि प्रत्येक इकाईयों पर पूर्ण रूप से और सुविधाजनक ढंग से विचार किया जा सके।''

वर्तमान अध्ययन में प्रतिदर्श के चुनाव के लिए उद्‌देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति का चयन किया गया है। उद्‌देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति प्रतिचयन की वह पद्धति है जिसमें शोधकर्ता अपनी योजना या उद्‌देश्य के अनुसार समग्र से इकाइयों का चयन करके प्रतिदर्श का निर्माण कर लेता है। इस पद्धति के माध्यम से झाँसी जनपद के आठ विकास खण्ड़ों से प्रति विकास खण्ड 25 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। इस प्रकार 200 उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र से तथा 100 उत्तरदाताओं का चयन झाँसी नगर निगम क्षेत्र से किया गया है। कुल 300 उत्तरदाताओं पर यह अध्ययन आधारित है। प्रतिदर्श का चुनाव इस दृष्टि से किया गया है कि जिससे ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो सके। इकाईयों के चयन में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि वे सभी आयु स्तर, शैक्षिक स्तर, एवं आर्थिक स्तर पर समग्र का प्रतिनिधित्व करें।

(६) अध्ययन में प्रयुक्त चर एवं सम्प्रत्यय-

(क) सामाजिक न्याय-

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूलभूत अनिवार्य आवश्यकताओं यथा- भोजन, वस्त्र, मकान एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की पूर्ति हो। प्रत्येक व्यक्ति को विकास का उचित अवसर प्राप्त हो। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को रोका जाये और आर्थिक तथा सामाजिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना। इस प्रकार सामाजिक न्याय शब्द के सीमित और व्यापक दो अर्थ हैं संकुचित अर्थ में यह मनुष्य के व्यक्तिगत सम्बन्धों में व्याप्त अन्याय का सुधार तथा विस्तृत अर्थों में मनुष्यों की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में व्याप्त असंतुलन व असमानता को दूर करना है।

(ख) जाति-

वंश परम्परा पर आधारित ऐसा सामाजिक चर जो अपने सदस्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यवसाय, सामाजिक सम्बन्धों इत्यादि का निर्धारक बन जाता है। जाति के

सन्दर्भ में व्यक्ति की स्थिति अपरिवर्तनीय होती है। जाति-प्रथा पूरे हिन्दू समाज को ऊँची-नीची श्रेणियों में बाँट देती है।

(ग) अनुसूचित जाति-

परम्परागत हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समय के सापेक्ष निम्न समझी जाने वाली जातियाँ जो अठारहवीं शताब्दी तक ब्रोकेन-मैन, अनटचबल्स, आउट-कास्ट, पंचम, अतिशूद्र, अवर्ण, अन्त्यज, नामशूद्र तथा बाद में दलित एवं हरिजन आदि नाम से जानी जाती है। जिन्हें सामाजिक व आर्थिक, शैक्षिक विकास के लिए भारतीय संविधान में निर्मित अनुसूची में सम्मिलित किया गया है। अनुसूचित जातियाँ कहलाती हैं। अनुसूचित जाति शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम साइमन कमीशन द्वारा किया गया और इस शब्द को भारत सरकार अधिनियम 1935 अनुच्छेद 279 में अपनाया गया।[1]

(घ) परिवार-

सामाजिक जीवन की मूलभूत इकाई जिसके सदस्य विवाह सम्बन्ध में बँधने के कारण, एक ही माता-पिता की सन्तान होने के कारण अथवा विधिवत गोद लिये जाने के कारण एक-दूसरे के साथ आपस में जुड़े होते हैं। परिवार के सदस्य परस्पर स्नेह, मान-अपमान, सहानुभूति, सेवा एवं त्याग की भावना से प्रेरित रहते हैं एवं सुख-दुःख आदि स्थिति में सभी भागीदार बनते हैं। ये सदस्य आपस में नैतिक मर्यादाओं से बँधे होते हैं जो अन्य सामाजिक सम्बन्धों एवं मर्यादाओं के लिए आदर्श प्रस्तुत करती हैं। परिवार ही संस्कृति के सम्प्रेषण का सर्वप्रथम प्रभावशाली सोपान है।

(ङ) एकांकी परिवार-

एकांकी परिवार से तात्पर्य वह परिवार जिसमें केवल विवाहित स्त्री-पुरुष अर्थात् पति-पत्नी एवं उनकी सन्तान सम्मिलित होती हैं। इनमें सन्तान तभी तक सम्मिलित रहती हैं जब तक वह अविवाहित हों। इन्हें दाम्पत्य मूलक परिवार भी कहा जाता है।

(च) <u>संयुक्त परिवार</u>-

इसमें पितृ परम्परा के तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य यथा पिता, पुत्र, पौत्र इत्यादि अपनी-अपनी पत्नी और संतान के साथ एक ही छत के नीचे निवास करते हैं तथा एक ही रसोई का बना भोजन; एक ही साथ धार्मिक अनुष्ठानों में सहभागिता करते हैं। यह सभी सदस्य अपनी आय एक ही स्थान पर जमा करके उसी एक स्रोत से अपना-अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इस परिवार में एक ही मुखिया होता है।

(छ) <u>समायोजन</u>-

वह स्थिति या दशा जिसमें विभिन्न व्यक्ति या समूह निरन्तर एक विशेष पर्यावरण में रहने के कारण या एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण अपनी-अपनी अभिरुचियों, हितों और लक्ष्यों के मार्ग में आने वाली बाधाओं को सहन करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। जिससे वे सभी सामाजिक प्रणाली की आशाओं के अनुरूप व्यवहार करते हैं तथा उनमें अपना समुचित स्थान बना सकें। इसका विपरीत रूप कुसमायोजन होता है।

(ज) <u>अधिसत्ता</u>-

विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों में शक्ति का संस्थापित एवं विधि सम्मत प्रयोग ही अधिसत्ता है। सत्ताधारी के आदेशों का पालन लोग इसलिए करते हैं क्योंकि उसको सामाजिक स्थिति को उचित और युक्ति संगत समझते हैं। साधारणतः सत्ता व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के साथ जुड़ी रहती है। परन्तु विशेष परिस्थितियों सत्ताधारी का विलक्षण व्यक्तित्व भी उसकी शक्ति को बहुत बढ़ा देता है।

प्रसिद्ध सामाजशास्त्री मैम्स वेबर ने अधिसत्ता[1] के तीन रूप प्रतिपादित किये हैं-

(क) परम्परागत अधिसत्ता

(ख) करिश्माई अधिसत्ता

(ग) कानूनी-तर्क सम्मत अधिसत्ता

तालिका संख्या-१

जनपद में जनगणना २००१ एवं उसके बाद आवाद ग्रामों का विकास खण्डवार विवरण

विकास खण्ड	जनगणना २००१ के अनुसार ग्रामों की संख्या			३१.०३.२००६ की स्थिति के अनुसार ग्रामों की संख्या			२००१ की जनगणना के बाद नगर क्षेत्र स्थानान्तरण ग्रामों की संख्या	अभिमुक्ति
	आबाद	गैर आबाद	कुल	आबाद	गैर आबाद	कुल		
१	२	३	४	५	६	७	८	९
मोठ	127	22	149	127	22	149	00	
चिरगाँव	105	15	120	104	16	120	00	
बमौर	101	14	115	101	14	115	00	
गुरसहाय	103	17	120	106	13	119	00	
बंगरा	82	06	88	82	06	88	00	
मऊरानीपुर	83	04	87	84	02	86	00	
बबीना	72	01	73	72	01	73	00	
बड़ा गाँव	87	00	87	83	01	84	00	
योग ग्रामीण	760	79	839	759	75	834	00	
योग	-	-	-	5	110	115	00	
जनपद योग	760	79	839	764	185	949	00	

तालिका संख्या- २

जनपद में विकास खण्डवार क्षेत्रफल, आवासीय मकान, परिवार संख्या तथा अनुसूचित जाति/जनजाति की जनसंख्या २००१

वर्ष/विकास खण्ड	क्षेत्रफल वर्ग किमी०	आवासीय मकानों की संख्या	परिवारों की संख्या	कुल जनसंख्या		
				कुल	पुरुष	स्त्री
१	२	३	४	५	६	७
	5024.00 5024.00 0000.00	183055 227704 174955	199003 236641 289863	1137031 863342 1744931	608428 466226 932818	528602 397110 812113
मोठ	644.24	NA	22508	137492	73393	64099
चिरगाँव	507.42	NA	21682	136503	67362	59141
बमौर	805.46	NA	20608	120045	64908	55137
गुरसहाय	715.48	NA	20907	121432	65348	56084
बंगरा	528.53	NA	23356	137253	72870	64383
मऊरानीपुर	592.69	NA	23592	139064	74083	64981
बबीना	551.47	NA	22198	136536	73004	63532
बड़ा गाँव	422.26	NA	19039	114822	61393	53429
समस्त विकास खण्ड	4763.55	141493	173890	1033147	552361	480786
वन ग्राम	0	0	15	24	18	6
ग्रामीण	67.19	141439	173905	1033171	552379	480792
नगरीय	67.19	33462	115968	711760	380439	331321
जनपद योग	-	174955	289863	1744931	932818	812113

नोट- कॉलम 2 में अंकित क्षेत्रफल व कॉलम 3 में अंकित आवासीय मकानों की संख्या जनसंख्या वर्ष 2001 के लिए अन्तिम है।

तालिका संख्या-३

वर्ष/विकास खण्ड	अनुसूचित जाति की जनंसख्या			अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या		
	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल	पुरुष	स्त्री
१	२	३	४	५	६	७
1981	325965	176889	149076	53	28	
1991	411788	222088	189700	187	100	
2001	489763	261406	228357	1070	566	
मोठ	41373	22020	19353	5	3	
चिरगाँव	36970	19671	17299	0	0	
बमौर	41538	22493	19045	0	0	
गुरसहाय	43300	23227	20073	57	35	
बंगरा	48558	25862	22696	67	37	
मऊरानीपुर	49720	26615	23105	0	0	
बबीना	35697	19054	16643	490	254	
बड़ा गाँव	32819	17561	15258	58	30	
समस्त विकास खण्ड	329975	176503	153472	677	359	
वन ग्राम	0	0	0	0	0	
योग ग्रामीण	329975	176503	153472	677	359	
योग नगरीय	159788	84903	74885	393	207	
जनपद योग	489763	261406	228357	1070	566	

(1) जनपद का ग्रामीण भौगोलिक क्षेत्रफल भारत के महासर्वेक्षण द्वारा आपूर्ति किये गये जनपद के भौगोलिक क्षेत्रफल में से नगरीय क्षेत्र घटाने के बाद किया गया है।

(2) विकास खण्डों का भौगोलिक क्षेत्रफल राजस्व परिषद द्वारा आपूर्ति किये गये प्रतिवेदित क्षेत्रफल पर आधारित है अतएव विकास खण्डों के भौगोलिक क्षेत्रफल का योग जनपद के ग्रामीण क्षेत्रफल से भिन्न है।

तालिका संख्या-४

जनपद में जनगणना आयु वर्गानुसार एवं वैवाहिक स्थिति के अनुसार स्त्री/पुरुष की जनसंख्या, २००१

आयु	अविवाहित		शादीशुदा		विधवा/विधुर		तलाक शुदा/ सम्बन्ध विच्छेद	
	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष
१	२	३	४	५	६	७	८	९
सभी आयु	356880	495479	408736	413933	45204	21916	1293	1490
00-09	190945	215268	0	0	0	0	0	0
10-14	97644	117141	2990	1546	269	103	64	61
15-19	49421	87981	21259	6462	218	97	67	62
20-24	11904	44604	60810	39552	518	432	173	174
25-29	2169	14831	65347	59269	822	809	200	234
30-34	625	4538	61959	61775	1383	1138	192	230
35-39	300	2181	51575	59714	1890	1342	179	197
40-44	269	1415	38450	47883	2298	1551	146	154
45-49	169	916	30813	36706	2670	1481	97	126
50-54	155	704	21605	29624	3809	1928	55	77
55-59	103	529	18870	20326	3548	1809	33	47
60-64	223	563	13957	18962	7376	2818	37	50
65-69	196	456	10145	15928	6138	2271	19	34
70-	592	1128	9306	17774	14058	6015	25	38

सभी आयु वर्ग में आयु नहीं बनायी गई के आँकड़े भी सम्मिलित हैं।

तालिका संख्या-५

जनपद में विकास खण्डवार साक्षर व्यक्ति तथा साक्षरता का प्रतिशत, २००१

वर्ष/विकास खण्ड	साक्षर व्यक्ति			साक्षरता का प्रतिशत		
	कुल	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	कुल
१	२	३	४	५	६	७
1981	308296	113037	421333	50.60	21.4	37.00
1991	417310	179330	596640	66.80	33.76	51.60
2001	617507	341262	958769	78.76	50.16	65.47
विकास खण्डवार वर्ष २००१						
मोठ	49703	24334	74037	81.18	45.54	64.57
चिरगाँव	45773	22024	67797	81.36	44.72	64.26
बमौर	41349	18421	59770	75.83	40.32	59.61
गुरसहाय	41039	17653	56692	75.25	38.02	58.13
बंगरा	42555	18559	61114	70.96	35.11	54.16
मऊरानीपुर	43455	18780	62235	71.93	35.46	54.89
बबीना	38741	15831	54572	65.28	30.98	49.41
बड़ा गाँव	36037	15644	15681	71.43	35.76	54.86
ग्रामीण	338652	151246	489898	74.15	38.24	57.49
वन क्षेत्र	15	0	15	83.33	–	62.50
नगरीय	278840	190016	468856	85.20	66.71	76.60
जनपद	617507	341262	958769	78.76	50.16	65.47

- 2001 की साक्षरता का प्रतिशत 74 अधिक वर्ष की जनसंख्या से सम्बन्धित है।
- जनगणना 2001 की सूचनायें जनपद की 31.03.2006 की भौगोलिक सीमा पर आधारित है।

तालिका संख्या-६
जनपद में महिला एवं बाल कल्याण तथा युवा कल्याण

वर्ष/विकास खण्ड	बालबाड़ी आँगन बाड़ी केन्द्रों की संख्या	युवा संगठनों की संख्या	महिला मण्डलों की संख्या
१	२	३	४
2003-2004	912	452	452
2004-2005	993	452	452
2005-2006	993	452	452
विकास खण्डवार वर्ष २००५-०६			
मोठ	116	51	51
चिरगाँव	100	57	57
बमौर	112	65	65
गुरसहाय	100	59	59
बंगरा	95	59	59
मऊरानीपुर	110	55	55
बबीना	169	52	52
बड़ा गाँव	91	54	54
योग ग्रामीण	893	452	452
योग नगरीय	100	0	0
जनपद	993	452	452

स्रोतः जिला क्रार्यक्रम अधिकारी, झाँसी

तालिका संख्या-७

जनपद में विकास खण्डवार परिवार एवं मादा शिशु कल्याण केन्द्र/उपकेन्द्र (संख्या)

वर्ष/विकास खण्ड	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र	युवा संगठनों की संख्या
१	२	३
2003-2004	11	251
2004-2005	11	251
2005-2006	18	326
विकास खण्डवार वर्ष २००५-०६		
मोठ	1	44
चिरगाँव	1	37
बमौर	1	38
गुरसहाय	1	39
बंगरा	1	41
मऊरानीपुर	1	40
बबीना	1	40
बड़ा गाँव	1	37
योग ग्रामीण	8	316
योग नगरीय	10	10
जनपद	18	326

स्रोतः मुख्य चिकित्सा अधिकारी, झाँसी

तालिका संख्या-८

जनपद में विकास खण्डवार विद्युतीकृत ग्राम एवं हरिजन बस्तियाँ व विद्युतीकरण से असेवित अनुसूचित जाति बस्तियाँ

वर्ष/विकास खण्ड	एल०टी०/एल० टी०डी०एस० के अन्तर्गत विकृतीकृत ग्राम (संख्या)	विद्युतीकरण अनुसूचित जाति बस्तियों की संख्या	विद्युतीकृत से असेवित अनुसूचित जाति बस्तियों की संख्या	ऊर्जाकृत निजी नलकूप/ पम्प सेटों की संख्या
१	२	३	४	५
2003-2004	578	661	0	3947
2004-2005	623	689	0	3980
2005-2006	697	760	0	4009
विकास खण्डवार वर्ष २००५-०६				
मोठ	122	125	0	729
चिरगाँव	97	108	0	1002
बमौर	71	79	0	139
गुरसहाय	93	106	0	197
बंगरा	79	84	0	265
मऊरानीपुर	84	99	0	399
बबीना	69	68	0	312
बड़ा गाँव	82	91	0	966
योग ग्रामीण	697	760	0	4009
योग नगरीय	0	0	0	0
जनपद	697	760	0	4009

स्रोतः (1) जिला अर्थ एवं संख्या अधिकारी, झाँसी

(2) अधिशासी अभियन्ता, विद्युत वितरण खण्ड 2, झाँसी

तालिका संख्या-९

प्रमुख मदों की सूचनाओं के संकेतक के अनुसार अवरोही क्रम में श्रेणीबद्ध विकासखण्ड

जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किमी० २००१		अनुसूचित जाति/ जनजाति का कुल जनसंख्या से प्रतिशत		कुल मुख्य कर्मकरों का कुल जनसंख्या से प्रतिशत २००१	
विकास खण्ड	संकेतक	विकास खण्ड	संकेतक	विकास खण्ड	संकेतक
१	२	३	४	५	६
बड़ागाँव	272.00	गुरसहाय	35.7	बमौर	30.2
बंगरा	262.00	मऊरानीपुर	35.7	गुरसहाय	29.9
चिरगाँव	249.00	बंगरा	35.4	मऊरानीपुर	29.9
बबीना	248.00	बमौर	34.6	बबीना	28.7
मऊरानीपुर	235.00	मोठ	30.4	मोंठ	28.4
मोंठ	213.00	चिरगाँव	29.2	चिरगाँव	28.1
गुरसहाय	170.00	बड़ागाँव	28.6	बंगरा	27.5
बमौर	149.00	बबीना	26.5	बड़ागाँव	26.3

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) श्रीवास्तव, जी.एन.पी. (1994) : एडवांस्ड रिसर्च मेथोडोलॉजी, राधा पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली।

(2) यंग, पी.वी (1960) : साइंटिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे।

(3) थामस, कार्सन एम. (1941) : एलिमेन्ट्री सोशल स्टेटिस्टिक्स, न्यूयार्क।

(4) गुडे डब्ल्यू.जी. एण्ड हॉट पी.के. (1952) : मेथइस इन सोशल रिसर्च, एन.सी. ग्रा. हिल बुक कं., न्यूयार्क।

(5) थामस, कार्सन एम. (1992) : रिसर्च मेथोडोलॉजी, कालेज बुक डिपो; जयपुर।

(6) गावा, ओ.पी. (1984) : समाज विज्ञान कोष, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली।

(7) जनगणना (2001) : भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली।

अध्याय - 3

अध्ययन इकाईयों की परिचयात्मक पृष्ठभूमि:

- पारिवारिक संरचना
- आयु संचरना
- जातीय स्थिति
- धार्मिक स्थिति
- व्यावसायिक स्थिति
- आवासीय स्थिति
- शैक्षिक उपलब्धियाँ
- आर्थिक स्थिति
- राजनैतिक स्थिति

अध्याय-3

अध्ययन इकाईयों की परिचयात्मक पृष्ठभूमि-

प्रस्तुत अध्ययन की पृष्ठभूमि, उद्देश्य तथा अध्ययन पद्धति का संक्षिप्त वर्णन करने के पश्चात् उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण जरूरी हो जाता है। इस अध्याय में उत्तरदाताओं की आयु, शिक्षा, जाति, वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति, परिवार की आय, निवास स्थान, धार्मिक स्थिति, व्यावसायिक स्थिति एवं राजनैतिक स्थिति आदि को जानने का प्रयास किया गया है।

सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यक्ति का सामाजिक अस्तित्व ही मूल रूप से उसके व्यक्तित्व के विकास तथा विचारों, घटनाओं, मूल्यों एवं मनोवृत्तियों को निर्धारित करता है। इस सन्दर्भ में व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि उसके जीवन के उद्देश्यों, मनोवृत्तियों, मानसिक स्थिति, मूल्यात्मक प्रवृत्तियों एवं समाज के प्रति सोच को निर्धारित करती है। इस दृष्टि से वर्तमान अध्ययन में महिला उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। सामाजिक-आर्थिक दशायें व्यक्ति की जीवन शैली को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय में अनूसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का तथ्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

(१) पारिवारिक संरचना-

छोटा परिवार सुखी परिवार। जिस परिवार में बच्चों की संख्या कम होती है वहाँ उनकी परवरिश अच्छे ढंग से होती है। उनकी प्रायः सभी इच्छायें माता-पिता पूरी करने की कोशिश करते हैं। उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा मिलती है। कम बच्चे होने

पर माँ उन्हें अच्छे संस्कार में पालने में सफल होती है क्योंकि उसका पूरा ध्यान उन्हीं बच्चों पर होता है। अधिक बच्चों वाली माँ तनावग्रस्त रहती हैं। वह अपने सभी बच्चों पर एक समान ध्यान नहीं दे पाती है जिसके कारण कुछ बच्चों में हीनता एवं विद्वेष की भावनाएँ पनपने लगती हैं और अपराधी प्रवृत्तियों की ओर बढ़ने लगते हैं। बच्चों की संख्या एक ऐसा चर अथवा परिवर्त्य है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता।

तालिका संख्या-३.१
उत्तरदाताओं के बच्चों की संख्या

बच्चों की संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
कोई नहीं	20	06.70
1-2	76	25.30
3-4	147	49.00
5-6	36	12.00
6 से अधिक	21	07.00
कुल योग	300	100.00

तालिका संख्या 3.1 में बच्चों की संख्या प्रदर्शित की गई है तालिका के अनुसार 49 प्रतिशत उत्तरदाताओं को उसे 4 बच्चे हैं, 5 से 6 बच्चों वाली उत्तरदाता 12 प्रतिशत हैं जबकि 5 बच्चों से अधिक उत्तरदाताओं का प्रतिशत 7.0 है। 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित होने अथवा अन्य कारणों से बच्चे रहित हैं।

प्रत्येक समाज में विशेषकर भारत जैसे परम्परागत समाजों में परिवार सामाजिक संरचना की मूल इकाई है। व्यक्ति के पालन-पोषण, सामाजीकरण, सामाजिक नियंत्रण

जैसी मूल क्रियाओं के साथ यह उसकी सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, संरचनात्मक तथा वैवाहिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। परिवार व्यक्ति के पद और स्थिति के तादात्मीकरण का मूल स्रोत है। विभिन्न विद्वानों ने पारिवारिक स्रोत तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि को व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि के मापदण्ड में एक प्रमुख निर्धारक माना है। इस दृष्टि से वर्तमान अध्ययन में उत्तरदाताओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि का विवरण तालिका संख्या 3.2 में दिया गया है।

तालिका संख्या-३.२
उत्तरदाताओं के परिवार की स्थिति

परिवार का स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
संयुक्त	110	36.67
एकांकी	190	63.33
कुल योग	300	100.00

आँकड़ों से स्पष्ट है कि अध्ययन में सर्वाधिक उत्तरदाता 63.33 प्रतिशत एकांकी परिवार की हैं जबकि 36.67 प्रतिशत संयुक्त परिवार से सम्बन्धित हैं।

सामाजिक स्थिति के निर्धारण में वैवाहिक स्थिति की एक विशिष्ट भूमिका है। किसी भी समाज में व्यक्ति की वैवाहिक स्थिति उसे समाज में पद एवं स्थिति प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन है। विवाहित व्यक्ति की जिम्मेदारियाँ, भूमिका अदायगी तथा कार्य तुलनात्मक दृष्टि से वृहद् होती है। उन्हें वैवाहिक जीवन के लक्ष्यों तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना पड़ता है। वैवाहिक स्थिति सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक तनाव का स्रोत हो सकता है। इसलिए वैवाहिक स्थिति के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण कर उनके विचारों का अध्ययन किया गया है।

तालिका संख्या-३.३
वैवाहिक स्थिति के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

वैवाहिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
अविवाहित	12	04.00
विवाहित	261	87.00
विधवा	18	06.00
तलाकशुदा/परित्यक्ता	09	03.00
कुल योग	300	100.00

तालिका संख्या 3.3 के आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 87.0 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित जीवन व्यतीत कर रही हैं। 6 प्रतिशत उत्तरदाता विधवा हैं जबकि 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वैवाहिक प्रस्थिति तलाकशुदा अथवा परित्यक्तता की है। अध्ययन में शामिल 4 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित हैं।

(२) आयु संरचना-

मानव समाज में आयु जैवकीय एवं सामाजिक दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जैवकीय स्तर पर आयु व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक विकास का मापदण्ड है। सामाजिक सन्दर्भ में यह व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं भूमिकाओं की सीमाओं के निर्धारण में एक विशिष्ट कारण है। आयु व्यक्ति की मानसिक एवं सामूहिक संरचना का प्रदर्शन करती है तथा सामाजिक दृष्टि से एक पीढ़ी को प्रदर्शित करती है। व्यक्ति की आयु सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अनुभवों के आधार पर उसकी सामाजिक व्यवस्था को निश्चित करती है।

तालिका संख्या-३.४

आयु के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

आयु वर्ग	आवृत्ति	प्रतिशत
21 - 30	48	16.00
31 - 40	118	39.30
41 - 50	68	22.70
50 से ऊपर	36	12.00
कुल योग	300	100.00

आयु के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण उपर्युक्त तालिका संख्या 3.4 में किया गया हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 39.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आयु 31-40 वर्षों तक है जबकि सबसे कम 12 प्रतिशत वाले उत्तरदाता की आयु 50 वर्ष या उससे अधिक है। 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आयु 41-50 वर्ष के बीच है जबकि शेष 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आयु 21 से 30 वर्ष तक है।

(३) जातीय स्थिति-

भारतीय सामाजिक संरचना को स्थायी बनाने और व्यवस्थित रूप से व्यक्ति के पद तथा कार्य को सुनिश्चित करने के लिए हमारा सम्पूर्ण अतीत परीक्षणों से भरा है। परीक्षण के तौर पर बनाई गयी व्यवस्था में से कुछ व्यवस्थायें स्थायी रूप से प्रभावपूर्ण रही हैं। इन सभी व्यवस्थाओं में जाति व्यवस्था ने हमारे समाज को काफी प्रभावित किया है। धुरिये के अनुसार भारत की यात्रा करने वाला कोई भी विदेशी यहाँ की जाति व्यवस्था से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वास्तव में जाति प्रथा ने हिन्दू

समाज को एक ऐसी व्यवस्था प्रदान की है। जिसमें सभी व्यक्ति अपने महत्वपूर्ण कार्य करते रहने के बाद भी पृथक अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते। भारत में जाति ही सामाजिक स्पष्टीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि नीची समझी जाने वाली हिन्दू जातियों में भी सभी जातियों की प्रस्थिति एक समान नहीं है। प्रत्येक जाति या उपजातियाँ भी अपने को एक-दूसरे से ऊँची या नीची समझती हैं।

तालिका संख्या-३.५
उत्तरदाताओं की जातिगत स्थिति

जाति	आवृत्ति	प्रतिशत
कोरी	63	21.00
चमार	48	16.00
धोबी	45	15.00
बाल्मीकि	36	12.00
बसोर	18	06.00
जाटव	14	04.70
पासी	42	14.00
खटिक	20	06.70
नट	04	01.30
मुसहर	10	03.30
कुल योग	300	100.00

महिला उत्तरदाताओं का वर्गीकरण जाति के आधार पर तालिका संख्या 3.5 में उल्लेखित किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक उत्तरदाता 21 प्रतिशत कोरी जाति की हैं। चमार 16 प्रतिशत, धोबी 15 प्रतिशत, पासी 14 प्रतिशत उत्तरदाता हैं। सबसे कम मुसहर 3.3 प्रतिशत एवं नट केवल 1.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस अध्ययन में शामिल हैं।

(४) धार्मिक स्थिति-

धर्म का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की मनोवृत्ति कैसी होगी, उसकी क्रिया-कलाप एक व्यवहार का ढंग कैसा होगा, यह बहुत कुछ उनके धर्म के आश्रम संहिता पर निर्भर करता है। वर्तमान अध्ययन के अन्तर्गत सबसे अधिक हिन्दू धर्म के ही उत्तरदाता हैं।

तालिका संख्या- ३.६
धर्म के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

धर्म	आवृत्ति	प्रतिशत
हिन्दू	279	93.00
बौद्ध	17	05.70
सिक्ख	04	01.30
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश 93.0 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। केवल 5.70 प्रतिशत अपने को बौद्ध धर्म तथा 1.30 प्रतिशत सिक्ख धर्म से सम्बन्धित मानती हैं। साक्षात्कार अनुसूची भरते समय सामान्य अवलोकन के दौरान शोधकर्ता को यह तथ्य भी ज्ञात हुआ कि जो उत्तरदाता अपने को बौद्ध अथवा सिक्ख धर्म से सम्बन्धित मानती हैं. उनके पूर्वज भी हिन्दू धर्म के ही अनुयायी रहे हैं।

(५) व्यावसायिक स्थिति-

व्यक्ति के स्वयं की व्यावसायिक स्थिति उसके व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करती है। विशेषत: अनुसूचित जाति महिलायें अगर आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होती हैं तो उनका सशक्तिकरण उतनी ही मात्रा में अधिक होता है। पारिवारिक निर्णय लेने की क्षमता अथवा सामाजिक भागीदारी में उनकी भूमिका और सुदृढ़ होती है। इस

दृष्टि से अध्ययनरत अनुसूचित जाति उत्तरदाताओं की स्वयं की व्यावसायिक स्थिति क्या है? जानने का प्रयास किया गया जिसे निम्न तालिका सं. 3.7 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-३.७

उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
नौकरी (सरकारी/प्राइवेट)	34	11.30
निजी व्यवसाय	12	04.00
मजदूरी	233	77.70
घरेलू महिला	21	07.00
कुल योग	300	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता 77.7 प्रतिशत मजदूरी कार्य में संलग्न हैं और 11.3 प्रतिशत प्राइवेट अथवा सरकारी नौकर हैं, 7 प्रतिशत महिलायें घरेलू कार्य करती हैं। तथा शेष 4 प्रतिशत महिला उत्तरदाता छोटे-मोटे निजी व्यवसाय भी करती हैं।

तालिका संख्या-३.८

उत्तरदाताओं के पति/पिता का व्यावसाय

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
मजदूरी	193	64.30
प्राइवेट नौकरी	24	08.00
निजी व्यवसाय	33	11.00
जातिगत पेशा	28	09.30
सरकारी नौकरी	22	07.40
कुल योग	300	100.00

तालिका संख्या 3.9 के अन्तर्गत महिला उत्तरदाता के पति/पिता के व्यवसाय के सम्बन्ध में आँकड़ें एकत्रित किये गये हैं। आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 64 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पति/पिता मजदूरी से ही अपना जीवनयापन करते हैं। 11 प्रतिशत निजी व्यवसाय करते हैं। 9.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अभिभावक अपने जातिगत पेशे से ही संलग्न हैं। 11 प्रतिशत प्राइवेट नौकरी करने वाले हैं।

(६) आवासीय स्थिति-

व्यक्ति कहाँ रहता है?, उसका पड़ोस कैसा है? ग्रामीण एवं शहरी परिवेश का भिन्न-भिन्न प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसकी मनोवृत्ति पर पड़ता है क्या उत्तरदाता शहर या गाँव से आते हैं?

तालिका संख्या-३.९

निवास स्थान के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

मूल निवास	आवृत्ति	प्रतिशत
ग्रामीण	200	66.70
शहरी/कस्बा	100	33.30
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त संकलित आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि 66.7 प्रतिशत उत्तरदाता ग्रामीण परिवेश के हैं जबकि 33.3 प्रतिशत शहरी पृष्ठभूमि के उत्तरदाता हैं। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के दृष्टिकोण से ऐसा माना जाता है कि शहरी परिवेश में रहने वाली महिलाओं को ग्रामीण महिलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत सामाजिक न्याय प्राप्त होता है।

व्यक्ति की आवासीय स्थिति उसकी आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित होती है। इसी प्रकार आवास की स्थिति का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टिकोण से उत्तरदाताओं से उनके आवास की स्थिति को जानने का प्रयास किया गया जिसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-३.१०

उत्तरदाताओं के आवास का स्वरूप एवं स्वामित्व

आवास का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
कच्चा	94	31.40
पक्का	52	17.30
झोंपड़ी	154	51.30
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अधिकांश 51.3 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता अपना जीवन निर्वाह झोंपड़ी बनाकर कर रहीं हैं। 31.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मकान का स्वरूप कच्चा है और शेष 17.3 प्रतिशत महिलायें पक्के मकानों में निवास करती हैं।

(७) शैक्षिक उपलब्धियाँ-

शिक्षा व्यक्ति के पद और स्थिति का निर्धारक है। शिक्षा ही वह साधन है जो आधुनिक समाजों में व्यक्ति के ज्ञान परिमार्जन एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए मूलतः उत्तरदायी है। शिक्षा आधुनिक तकनीकी एवं यांत्रिक व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योग्यताएँ प्रदान करती है तथा समाज के भिन्न-भिन्न सदस्यों को सामाजिक श्रृंखला में सामाजिक गतिशीलता के लिए अवसर प्रदान करती है।

तालिका संख्या-३.११

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षित	171	57.00
प्राइमरी	58	19.30
हाईस्कूल	14	04.70
इण्टरमीडिएट	30	10.00
स्नातक	12	04.00
परास्नातक	06	02.00
व्यावसायिक योग्यता	09	03.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका संख्या 3.11 से स्पष्ट है कि सबसे अधिक शिक्षा स्तर के आधार पर देखा जाये तो अधिकांश उत्तरदाता लगभग 57.00 प्रतिशत अशिक्षित ही हैं। जो शिक्षित उत्तरदाताएँ हैं उनकी शिक्षा के स्तर में अन्तर है। चूँकि झाँसी जनपद वैसे भी उत्तर प्रदेश का सबसे पिछड़ा क्षेत्र रहा है, 19.3 प्रतिशत शिक्षित उत्तरदाताओं का शैक्षिक स्तर प्राइमरी तक का ही है जबकि सबसे कम 2 प्रतिशत स्नातकोत्तर उत्तरदाता हैं। 10 प्रतिशत उत्तरदाता इण्टरमीडिएट तक शिक्षा ग्रहण की है इसी प्रकार क्रमशः 4.7 प्रतिशत हाईस्कूल, 4 प्रतिशत स्नातक उत्तरदाताएँ हैं। जबकि 3 प्रतिशत उत्तरदाता व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त हैं।

उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति के आधार के अलावा उनके पति/पिता का शैक्षणिक स्तर क्या है ये भी उधृत करना उत्तरदाता ने उचित समझा है जिसको निम्न तालिका के द्वारा दर्शाया है।

तालिका संख्या-३.१३
उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय

आय	आवृत्ति	प्रतिशत
2000 तक	173	57.70
2001 - 5000	52	17.30
5001 - 8000	32	10.60
8001 - 11000	18	06.00
11001 - 14000	08	02.70
14001 - 17000	08	02.70
17001 - 20000	06	02.00
20000 - ऊपर	03	01.00
कुल योग	300	100.00

प्रस्तुत तालिका संख्या 3.13 में रु. 2000 मासिक पारिवारिक आय वाली उत्तरदाता सर्वाधिक 57.7 प्रतिशत हैं। 17.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक पारिवारिक आय रु. 2001 से रु. 5000 तक है। जबकि 6 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक आय रु. 8000 तक है। रु. 14000 से ऊपर मासिक पारिवारिक आय वाली उत्तरदाताओं की संख्या मात्र 5.7 प्रतिशत है। अतः अध्ययनरत सर्वाधिक उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर ही है।

(९) राजनीतिक स्थिति-

महिलाओं के लिए संवैधानिक प्रावधान के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को जातिगत आरक्षण भी प्राप्त है। इस दृष्टिकोण से स्वयं ही अन्य महिलाओं की भाँति अनुसूचित

जाति महिलाओं को भी आरक्षण प्रदत्त है। 1986 के उपरान्त राज्य में होने वाले विगत तीन पंचायत/निकायों के चुनाव में भारी संख्या में अनुसूचित जाति महिलाओं को राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित हुई है। राजनीतिक शक्ति व्यक्ति के वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विकास की 'मास्टर की' समझी जाती है।

इस उद्देश्य से अध्ययनरत उत्तरदाताओं के राजनीतिक पृष्ठभूमि को जानने का भी प्रयास किया गया है। उनसे पूछा गया कि आपकी राजनीति में रुचि है या नहीं? आप केवल मतदाता तक ही सीमित है या अपनी सक्रिय भागीदारी देना चाहती हैं? इससे सम्बन्धित प्राप्त आँकड़े निम्न तालिका संख्या 3.14 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-३.१४

उत्तरदाताओं की राजनीतिक अभिरूचि

राजनीतिक अभिरूचि	आवृत्ति	प्रतिशत
रुचि लेती हैं	198	66.00
रुचि नहीं लेती हैं	48	16.00
तटस्थ	54	27.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश 66 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता अब धीरे-धीरे राजनीति में रूचि लेने लगी हैं। 16 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीति से अभी भी उदासीन हैं जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनीति के प्रति अपना तटस्थ अभिव्यक्ति ही प्रदान की है।

राजनीतिक शक्ति संरचना व निर्णय प्रक्रिया से जुड़े कार्यकलापों में सशक्त व सुनिश्चित भागेदारी ही महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त कर सकती है। आज सम्पूर्ण विश्व की महिलाएँ, समाज में शक्ति के असमान व एक पक्षीय वितरण को चुनौती देने हेतु निरन्तर प्रयास कर रही है।

महिलाओं की उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, विशेषकर राजनीति में उनका सशक्तिकरण हो, उनकी सहभागिता का स्तर उच्च हो। ऐसा होने पर ही लैंगिक आधार पर एक समानतापूर्ण समाज की स्थापना होगी। महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण हेतु तीन आधारभूत सिद्धान्तों को अनिवार्य माना जा सकता है :-

1. स्त्री-पुरुष के मध्य समानता।
2. स्वयं की क्षमताओं के पूर्ण विकास का महिलाओं का अधिकार।
3. स्वयं के प्रतिनिधित्व व स्वयं के सन्दर्भ में निर्णय लेने का महिलाओं का अधिकार।

राजनीतिक परिदृश्य में आज भी महिलाओं की भूमिका बहुत सार्थक नहीं मानी जा सकती। निर्णय प्रक्रिया में सशक्त भागेदारी के अभाव में प्रायः ही उन्हें संसाधनों के असमान वितरण, अपने हितों की उपेक्षा तथा अनेकों अन्य वंचनाओं का सामना भी करना पड़ता है। पिछले कई दशकों से चले आ रहे महिला आन्दोलनों की प्रभावशाली उपलब्धियाँ रही हैं, परन्तु इसके पश्चात् भी राजनीतिक शक्ति संरचना में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व देखने को नहीं मिलता। आज भी पूरे विश्व में औसतन 12-13 प्रतिशत महिलाएँ ही विधायी संस्थाओं हेतु निर्वाचित हो रही हैं। भारत में भी कमोवेश यही स्थिति है।

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी प्रवृत्तियों की जाँच, मुख्यतः चुनावों में मतदाताओं व उम्मीदवारों के रूप में राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के आधार पर की जा सकती है।

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार महिला मतदाताओं का उच्चतम प्रतिशत (59.2) 1984 के चुनावों में रहा। आँकड़ों से स्पष्ट है कि लगभग सभी चुनावों में 50 प्रतिशत से अधिक महिलाओं ने मतदाता के रूप में सहभागिता की है तथा यह

प्रतिशत 55, 57 व 59 तक भी रहा है। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि इस रूप में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता हमेशा पुरुषों से कम रही है तथा सभी चुनावों में महिला व पुरुषों के मध्य यह अन्तर 8 से 16 प्रतिशत तक रहा है।

तालिका संख्या-३.१५

विभिन्न चुनावों में मतदाताओं की संख्या व मतदान प्रतिशत का लैंगिक विभाजन

चुनाव वर्ष	मतदाताओं की कुल संख्या (मिलियन में)			मतदान प्रतिशत		
	महिला	पुरुष	कुल	महिला	पुरुष	कुल
1952	उ.न.	उ.न.	173.2	उ.न.	उ.न.	61.2
1957	उ.न.	उ.न.	193.7	उ.न.	उ.न.	62.2
1962	102.4	113.9	216.3	46.6	62.0	55.0
1967	119.4	129.6	249.0	55.5	66.7	61.3
1971	उ.न.	उ.न.	274.1	उ.न.	उ.न.	55.3
1977	154.2	167.0	321.2	54.9	65.6	60.5
1980	170.3	185.2	355.5	51.2	62.2	56.9
1984	192.3	208.0	400.3	59.2	68.4	64.0
1989	236.9	262.0	498.9	57.3	66.1	61.9
1991	234.5	261.8	498.3	51.4	61.6	56.7
1996	282.8	309.8	592.6	53.4	62.1	57.9
1998	289.2	316.7	605.9	57.9	65.7	61.9
1999	295.7	328.8	619.9	55.6	63.9	59.9
2004	321.9	349.5	671.4	53.3	61.7	57.6

स्रोत- निर्वाचित आयोग-भारत सरकार नई दिल्ली के आँकड़े।

उम्मीदवारी के मामले में तो स्त्रियों व पुरुषों के मध्य यह अन्तर स्पष्टतः बहुत अधिक है। आँकड़ों से स्पष्ट है सभी चुनावों में पुरुष उम्मीदवारों की तुलना में महिला

उम्मीदवारों की संख्या बहुत कम है तथा निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत भी कुल के अनुपात में बहुत कम है।

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य ही रहा है। प्रतीकात्मक रूप से मंत्रिपरिषद में स्थान पाने वाली महिलाओं को अधिकांशतः कम महत्त्वपूर्ण विभागों का कार्य आवंटित किया जाता है जिससे निर्णय प्रक्रिया को वे बहुत कम प्रभावित कर पाती हैं। महिलाओं से सम्बन्धित राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि 'संख्या की दृष्टि से महिलाएँ अल्पसंख्यक नहीं मानी जा सकती, परन्तु स्थिति व राजनीतिक शक्ति में असमानता के कारण उसमें अल्पसंख्यकों के लक्षण बढ़ते जा रहे हैं।

तालिका संख्या-३.१६

विभिन्न चुनावों में उम्मीदवारों व निर्वाचित व्यक्तियों का लैंगिक विभाजन

चुनाव वर्ष	उम्मीदवारों की कुल संख्या	महिला			पुरुष		
		कुल उम्मीदवार	निर्वाचित उम्मीदवार	निर्वाचित उम्मीदवारों का प्रतिशत	कुल उम्मीदवार	निर्वाचित उम्मीदवार	निर्वाचित उम्मीदवारों का प्रतिशत
1952	1874	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.
1957	1518	45	27	60.0	1473	467	31.7
1962	1985	70	35	50.0	1915	469	24.0
1967	2369	67	30	44.8	2302	490	21.3
1971	2484	86	21	24.4	2698	499	18.5
1977	2439	70	19	27.1	2369	523	22.1
1980	4620	142	28	19.7	4478	514	11.5
1984	5574	164	42	25.6	5406	500	09.2
1989	6160	198	27	13.6	5962	502	08.4
1991	8699	325	37	11.4	8374	484	05.8
1996	13952	599	40	06.7	13353	503	03.8
1998	4750	274	43	15.7	4476	500	11.2
1999	4648	284	49	17.2	4364	494	11.3

स्रोत- निर्वाचित आयोग-भारत सरकार नई दिल्ली के आँकड़े। नोट- आँकड़े लोकसभा चुनाव से सम्बन्धित हैं। उ.न. उपलब्ध नहीं।

सामाजिक बाधाएँ-

निम्नलिखित सामाजिक स्थितियाँ कुछ हद तक महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को सीमित करती हैं :-

- घर के बाहर कार्य करने की स्थिति में घर-परिवार व कार्यक्षेत्र के दोहरे दायित्व का निर्वाह करने की बाध्यता, महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों को सीमित कर देती है। यही कारण है कि राजनीतिक जीवन में उनकी संलग्नता उस प्रकार की नहीं हो पाती जैसी कि पुरुषों की होती है।
- निश्चित लैंगिक भूमिकाओं के निर्वाह हेतु महिलाओं का समाजीकरण होना।
- प्रजनन कार्य व शिशु पालन-पोषण का एकांगी दायित्व।
- अशिक्षा व तुलनात्मक रूप से निम्न शैक्षिक स्तर।
- पारम्परिक श्रम विभाजन के अनुरूप निर्धारित प्रदत्त भूमिकाओं के निर्वाह में अधिक समय व श्रम का व्यय होना।

राजनीतिक बाधाएँ-

कुछ राजनीतिक बाधाएँ भी ऐसी हैं जो कि स्त्री को राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने व सक्रिय होने से रोकती हैं :-

- अत्यधिक धन व शारीरिक बल पर आधारित निर्वाचन प्रणाली का वर्तमान स्वरूप महिलाओं के लिए राजनीतिक सहभागिता को कठिन बना देता हैं।
- राजनीतिक दलों की संरचना व एजेण्डा चूंकि मुख्यतः पुरुष-प्ररिप्रेक्ष्य में ही निर्धारित होता है, अतः स्वयं के बूते राजनीतिक में सफलता प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या नगण्य ही दिखाई देती हैं। हाँ, राजनीतिक-पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़ी कुछ महिलाएँ राजनीतिक दलों में सक्रिय भूमिका का निर्वाह तो कर रहीं हैं, परन्तु उनमें से भी अधिकांश की भूमिका प्रतीकात्मक मात्र बन कर रह जाती है।

- सशक्त सम्प्रेषण सफल राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण उपकरण है। अपर्याप्त प्रशिक्षण व बाह्य जीवन में पर्याप्त अन्तः क्रिया के अभाव में महिलाओं की सम्प्रेषण क्षमता प्रायः पुरुषों के समान सशक्त नहीं होती है। यह कमी भी उनकी राजनीतिक सफलता में बाधक तत्व बनती है।

अध्याय - 4

महिलाओं के पारिवारिक समायोजन की प्रकृति :

- परिवारिक सदस्यों के अन्तः सम्बन्ध
- नातेदारी सम्बन्धों की प्रकृति एवं स्वरूप
- परिवार एवं विवाह सम्बन्धी विशिष्ट मान्यतायें
- महिलाओं का अधिसत्ता एवं न्यायिक प्रभाव
- महिलाओं की जैविकीय इच्छाएँ/आवश्यकताएँ
- गृहस्थी के निष्पादन में महिलाओं की भूमिका
- आर्थिक, नियंत्रण एवं प्रबन्धन में महिलाओं की स्थिति
- पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता
- क्षेत्र के बाहर महिलाओं की सहभागिता एवं कार्य।

महिलाओं के पारिवारिक समायोजन की प्रकृति-

अनुसूचित जातीय महिलाओं की पारिवारिक सरंचना सामान्यतया पारिवारिक सम्बन्धों की प्रकृति पर आधारित होती है। प्रायः यह पाया गया है कि अनुसूचित जाति महिला की पारिवारिक प्रस्थिति एवं भूमिका मूलतः ऐसे अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों के समूह द्वारा प्रभावित होती है जो उनके बच्चों या ससुराल के अन्य नातेदारों के मध्य पाये जाते हैं। अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाएं तीन प्रकार की विस्तृत व्यवस्थाओं के अन्तर्गत जीवन-यापन करती प्रतीत होती हैः-

1. अपने बच्चों के साथ विधवा स्थिति में या पति एवं बच्चों के साथ जीवन-यापन करना तथा
2. अपने बच्चों से दूर रहकर समय-समय पर उनसे मेल-मिलाप करते हुये जीवन-यापन करना।
3. अपने पति के साथ रहकर जीवन-यापन करना।

भारतीय मूल्य व्यवस्था की यह विशेषता रही है कि यहां के लोगों ने महिलाओं के प्रति सदा ही प्रेम एवं सम्मान का भाव रखा है। विशेष रूप से वृद्धावस्था में उनकी देखरेख में लोगों का अधिक लगाव रहा है। इसी कारण पुत्र एवं बधू के साथ ही अधिकांशतः वृद्ध माता-पिता ज्यादा सकून से रहते हैं। किन्तु पुत्र के न होने पर या पुत्र के कहीं दूर जाकर बस जाने पर विवाहित पुत्रियाँ अपने वृद्ध माता-पिता के साथ रहने लगती है।

(१) <u>पारिवारिक सदस्यों के साथ अन्तः सम्बन्ध</u>-

प्रायः यह देखा गया है कि भावनात्मक या संवेगात्मक पराश्रयता महिलाओं को साथ रहने को प्रेरित ही नहीं करती अपितु बाध्य भी करती है। नगरीकरण की प्रक्रिया एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण नगरीय जीवन ने परम्परागत संयुक्त परिवार के रूप में रहना दुर्लभ होता जा रहा है। यह भी देखा गया है कि ऐसी अनुसूचित जाति महिलाओं की अपने बच्चों से भावात्मक सम्बद्धता अधिक होती है जो अपने माता-पिता से किन्हीं कारणों से अधिक प्यार-दुलार नहीं पा सकीं। इस तथ्य का संज्ञान करने हेतु चयनित उत्तरदाताओं से उनके अमूल्य विचार पूछे गये। प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 4.1 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-४.१

<u>सन्तानों से भावनात्मक सम्बद्धता की स्थिति</u>

भावनात्मक सम्बद्धता	आवृत्ति	प्रतिशत
बच्चे अलग रहते हैं	219	73.00
बच्चे साथ रहते हैं	81	27.00
कुल योग	300	100.00

तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि 73 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएं यह स्पष्ट करती है कि वे अपने विवाहित बच्चों से अलग रहती है क्योंकि आवासीय सुविधा सुलभ नहीं है। कुछ बच्चे रोजी-रोटी की तलाश में अन्यत्र जाकर बस गये है जो कभी-कभी आते-जाते रहते हैं। इसके विपरीत 27 प्रतिशत उत्तरदाता जो यह मानती हैं कि उनके अधिकांश अविवाहित बच्चे एवं कुछ विवाहित बच्चे उनके साथ ही रहते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाएं जनसंख्या वृद्धि एवं नौकरी के कारण अपने बच्चों के साथ नहीं रह पाती हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कुछ सूचनादाता अन्धविश्वासी एवं परिवारवादी विचारधाराएं की कट्टर समर्थक हैं वे यह मानती हैं कि जिस घर में वे कुछ साल पूर्व बहू के रूप में आयीं और गृहणी के रूप में जीवन व्यतीत किया वे उस आवास को किसी भी कीमत में छोड़ नहीं सकती। कुछ अनुसूचित जाति उत्तरदाता ऐसी भी हैं जो अपने पति के साथ ही रहती हैं किन्तु परिजनों के साथ जीवन की सुख सुविधाओं का भरपूर आनन्द प्राप्त करती हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली आवासीय समस्या के निदान हेतु नवीन आवास बनवाकर उनमें रहना अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है। साथ ही ऐसे नवनिर्मित भवनों में बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखते हुये कोई न कोई जीविकोपार्जन की व्यवस्था भी की गई है जिससे परिवार के सभी सदस्यों का एक साथ रहना संभव नहीं हो पा रहा है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि अनुसूचित जाति महिलाओं की संतानों से संवेगात्मक संबद्धता प्रवृत्ति से संयुक्त परिवार जैसी है मात्र आवासीय स्थिति अलग-अलग या व्यवस्था मूलक है।

बहुत से ऐसे सन्दर्भ भी अवलोकित किये गये हैं कि अनुसूचित जाति महिलाओं के विवाहित बच्चे दूसरे शहरों में नौकरी करते हैं। जिससे वे अपने माता-पिता के साथ नहीं रह पाते हैं वे यथाशक्ति अपने किसी भाई या बहन को ही अपने साथ रखते हैं लेकिन कुछ विशेष त्योहारों या विवाह आदि के अवसर पर वे अपने पैतृक आवास में आकर पारिवारिक संगठन, एकता व भाईचारे की स्थितियों को मजबूत करते रहते हैं ऐसे बहुत कम संदर्भ हैं यहाँ बच्चे नाराज होकर अपने माता-पिता को उनके भाग्य पर छोड़कर अलग रहना पसन्द करते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी उत्तरदाता है जिन्होनें बताया कि पैतृक सम्पत्ति का बटवारा हो जाने पर दूसरे नगरों में बसने वाले बच्चों ने अपनी सम्पत्ति को बेचकर यहाँ से हमेशा के लिये अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ प्रगतिशील परिवार की अनुसूचित जाति महिलाओं ने अपने पति की इच्छा से जानबूझकर अपने सास-ससुर व अन्य परिजनों से अलग रहना ही श्रेष्ठकर माना है। इनके साथ मात्र इनके अविवाहित बच्चे ही रहते हैं। इससे उनकी परम्परागत मान-प्रतिष्ठा अक्षुण्य बनी रहती है। आवश्यकतानुसार वे परिजनों के पास जाकर अपनी निकटता को प्रदर्शित भी करती रहती हैं। अधिक उम्र अथवा वृद्ध उत्तरदाताओं का मानना है कि स्वतंत्र रूप से रहने के कारण उनके विवाहित बच्चों, बहूओं आदि को पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है वे जिस तरह से भी रहना चाहें, रह सकते हैं। उन पर अनावश्यक नियंत्रण, दबाव एवं हम वृद्धों का भार नहीं रहता है। इससे वे भी सुखी एवं हम लोग भी सुखी रहते हैं। उनका मानना है कि विवाह के उपरान्त बच्चे नासमझ नहीं रहते प्रत्युत अपना अच्छा-बुरा ठीक ढंग से समझते हैं। अतः उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता दी जानी चाहिए जिससे वे जिस तरह चाहें अपने परिवारीजनों का मार्गदर्शन करें। बच्चों को पढ़ाये-लिखायें और उन्हें आत्म निर्भर बनायें। इनका यह भी मानना है कि ऐसे परिवार जहाँ वैचारिक मतभेदों से तनाव, ईर्ष्या, संघर्ष, कुण्ठा जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो तो ऐसे परिवार में एक साथ रहना नरक तुल्य होता है। इस तरह की स्थितियों ने अनुसूचित जाति महिलाओं की संतानों से भावात्मक सम्बद्धता की स्थिति को समझने में सहायता की है।

अलग रहने वाले बच्चों से अनुसूचित जातीय महिलाओं के सम्बन्धों की प्रवृति-

सम्बन्धों की भावात्मक सम्बद्धता जानने के उपरान्त यह जानने का प्रयास किया गया कि अनुसूचित जाति महिलाओं के जो बच्चे या परिवारीजन अलग रहते हैं, उनके साथ सम्बन्धों की क्या स्थिति है? अर्थात सम्बन्ध अभी भी अस्तित्व में हैं या सम्बन्ध लगभग समाप्त हो गये हैं? इस विषय में सूचनादाताओं से उनके विचार जानने का प्रयत्न किया गया। प्राप्त विचारों को तालिका संख्या 4.2 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-४.२

अलग रहने वाले परिवारीजनों के सम्बन्धों की प्रवृति का विवरण

सम्बन्धों की प्रवृत्ति	आवृत्ति	प्रतिशत
सम्बन्ध अभी भी अस्तित्व में है	276	92.00
सम्बन्ध लगभग समाप्त हो गये हैं	24	08.00
कुल योग	300	100.00

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 92 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करती है कि उनसे अलग रहने वाले परिवारीजनों से उनके सम्बन्ध अभी भी बने हुये हैं। मात्र 8 प्रतिशत सूचनादाता यह व्यक्त करती है कि अब उनके सम्बन्ध लगभग प्रायः समाप्त से हैं। उन्होंने बड़े दु:खी मन से कहा कि अब कोई आशा नहीं है और न ही हमने कभी सोचा भी नहीं था कि भविष्य में ऐसा भी होगा।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाएं अपने विवाहित बच्चों से अलग रहने को अधिक उपयोगी मानती हैं तथा आपसी समझ के आधार पर अलग रहते हुए भी सम्बन्धों को बनाये रखना श्रेयष्कर है।

सम्बन्ध बनाये रखने हेतु प्रयुक्त तकनीकों का विवरण-

आज के जटिल एवं व्यस्त जीवन में किसी भी व्यक्ति से स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित करना एवं उन्हें निरन्तर जीवित बनाये रखना सामान्य व्यक्ति के लिये अत्यन्त कठिन कार्य है। अतः यह प्रयास किया गया है कि उन उपायों (तकनीकों) को समझना उपयोगी होगा जिनका प्रयोग करके अनुसूचित जाति महिलाएं अपने से अलग रहने वाले परिवारीजनों से भी सम्बन्ध बनाये हुये हैं। इसी तथ्य को जानने के लिये सम्बन्धित सूचनादाताओं से तथ्य एकत्रित एवं किये गये। एकत्रित तथ्यों को तालिका संख्या 4.3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-४.३
परिवारीजनों से सम्बन्ध रखने हेतु प्रयुक्त तकनीक

प्रयुक्त तकनीक	आवृत्ति	प्रतिशत
विवाहित आदि के विषय में उचित सुझाव प्रदत्त करे	210	70.00
परस्पर एक दूसरे की सहायता से	243	81.00
परस्पर एक दूसरे के यहाँ भोजन करके	96	32.00
परिवारीजनों की यथाशक्ति आर्थिक सहायता करके	60	20.00

नोट- खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं होगा।

तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि 81 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानती है कि परस्पर एक दूसरे की सहायता करते रहने पर सम्बन्धों में स्थिरता व मधुरता बनी रहती है। एक दूसरे के विषय में जानकारी भी मिलती रहती है जो सम्बन्धों का स्थायित्व प्रदान करती है। 70 प्रतिशत अनुसूचित जाति उत्तरदाता यह स्पष्ट करती हैं कि विवाह आदि को तय करने एवं सम्बन्ध करने में बहुत सी ऐसी स्थितियाँ या परम्परायें होती हैं जिनमें एक-दूसरे को सुझाव अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। अतः अलग रहने वाले परिवारीजनों को इस विषय में सुझाव आदि प्रदत्त कर सम्बन्ध बनाये रखती है। इसके अतिरिक्त 32 प्रतिशत ऐसी वृद्ध उत्तरदाता यह स्वीकार करती हैं कि कभी-कभी तीज त्योहार या उत्सव आदि के अवसरों पर एक साथ मिल बैठकर भोजन करना आत्मीयता का प्रतीक माना जाता है। इसीलिये अपने परिवारीजनों के यहाँ जाकर या बुलाये जाने पर भोजन करती रहती हैं और उन्हें भी अपने यहाँ बुलाकर भोजन आदि में सम्मिलित करती रहती हैं मात्र 20 प्रतिशत ऐसी दयालु अनुसूचित जाति उत्तरदाता हैं जो यह मानती हैं कि आवश्यकता पड़ने पर यदि

परिवारीजनों की यथाशक्ति आर्थिक सहायता कर दी जाती है तो वे लोग अधिक सम्मान व सेवा करते हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि परस्पर एक-दूसरे की सहायता करना एवं विवाह आदि अवसरों पर उचित सुझाव देना, अलग रहने वाले परिवारीजनों से स्थायित्व के सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

परिवारीजनों से सम्बन्ध समाप्त होने के कारणों का विवरण-

यहाँ यह जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि उत्तरदाताओं को अपने परिवारीजनों से सम्बन्ध किन कारणों से समाप्त हो गये हैं। यही जानने के उद्देश्य से अनुसूचित जाति महिलाओं से आग्रह किया गया कि जिनके सम्बन्ध समाप्त हो चुके हैं वे उन कारणों या परिस्थितयों को स्पष्ट करें जो सम्बन्ध समाप्त करने में सबसे अधिक उत्तरदायी है। सूचनादाताओं द्वारा प्रदत्त तथ्यों को विश्लेषण हेतु तालिका 4.4 में प्रदर्शित किया गया है-

तालिका संख्या-४.४
सम्बन्ध समाप्त होने के कारणों का विवरण

कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
पैतृक सम्पत्ति का स्थायी बँटवारा होना	30	10.00
वैचारिक मतभेद होना	99	33.00
बच्चों का अधिक दूर जाकर रहना	150	50.00
बच्चों का कोई लगाव न होना	15	05.00
माँ/पिता का दूसरी शादी कर लेना	06	02.00
कुल योग	300	100.00

तालिका से ज्ञात होता है कि 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति उत्तरदाता यह मानती हैं कि बच्चों के नौकरी आदि के कारण अधिक दूर जाकर बस जाने के कारण अब उनका आना-जाना सम्भव नहीं हो पाता है, जबकि 33 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करती हैं कि उनके बच्चों से उनके वैचारिक मतभेद इतने अधिक बढ़ गये हैं कि अब सम्बन्ध रखना सम्भव नहीं है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पैतृक सम्पत्ति के विभाजन को ही सम्बन्धों के समाप्त होने का आधार मानती है। 5 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि बच्चों का हम लोगों के प्रति अब कोई लगाव ही नहीं रहा। जबकि 2 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सास/ससुर द्वारा दूसरा विवाह कर लेने को सम्बन्ध समाप्त होने का कारण बताया।

अतः कहा जा सकता है कि बच्चों का दूर जाकर रहना एवं वैचारिक मतभेद तथा पारिवारिक सम्पत्ति का विभाजन ही मूल रूप से सम्बन्ध समाप्त होने का प्रमुख कारण रहा है।

अध्ययन में शामिल अनुसूचित जाति उत्तरदाताओं के पारिवारिक संरचना सम्बन्धी विश्लेषण से विदित होता है कि ये महिलाएं अधिक मात्रा में अपने परिवारीजनों के सम्पर्क में रहती हैं तथा अन्तः क्रियाएं सम्पन्न करती रहती हैं। ऐसे परिवारीजन जो विभिन्न कारणों से अन्यन्त्र जाकर बस गये हैं वे भी समय-समय पर आते-जाते रहते हैं। इस कारण सामान्यतया अलग होने के बावजूद भी सम्बन्धों में जीवंतता बनी हुयी है।

(२) नातेदारी सम्बन्धों की प्रकृति तथा स्वरूप-

भारतीय जीवन विधि की यह परम्परागत मान्यता रही है कि प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध उसके नाते-रिश्तेदारों से निरन्तर एवं स्वस्थ बने रहें, इसके लिये विशिष्ट कर्त्तव्यों (नातेदारी व्यवस्था) की अपेक्षा भी की गयी है। इसी प्रकार नगरीकरण व औद्योगीकरण व व्यक्तियों को घर-परिवार छोड़कर अन्यत्र नौकरी करने के सुअवसर

भी प्रदत्त किये परिणामतः घर के कुछ सदस्य सुदूर जाकर बस जाते जिनसे सम्पर्क रखना एक समस्या है। इस संदर्भ में उत्तरदाताओं से उनकी स्थिति जानने का प्रयास किया गया प्रायः तथ्यों को तालिका संख्या 4.5 में दर्शाया गया है-

तालिका संख्या-४.५

नातेदारों से उत्तरदाताओं के सम्पर्क की स्थिति का विवरण

सम्बन्धों की प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशत
नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध बना रहता है।	252	84.00
नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध समाप्त हो गये हैं	48	16.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 84 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं ने स्वीकार किया है कि अभी भी उनके सम्बन्ध उनके नाते-रिश्तेदारों से बने हुये हैं जबकि इसके विपरीत 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसके प्रतिपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलायें अपने सभी नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध बनाये रखने की इच्छुक रहती है।

नातेदारों से सम्बन्ध बने रहने की स्थिति स्पष्ट हो जाने के बाद यह भी जानने का प्रयास शोधकर्ता द्वारा किया गया कि इनके द्वारा सम्पर्क बनाये रखने के लिये कौन-कौन सी तकनीक अपनाई जाती है। इस संदर्भ में उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्य को तालिका संख्या 4.6 में व्यक्त किया गया है।

तालिका संख्या-४.६
नातेदारों से सहसम्बन्ध बनाये रखने की तकनीकों का विवरण

तकनीक	आवृत्ति	प्रतिशत
दूसरों के द्वारा उनके सम्पर्क में रहकर	36	12.00
विभिन्न अवसरों पर आवश्यकतानुसार एक-दूसरे की सहायता करके	48	16.00
पारिवारिक, वैवाहिक समस्याओं में परामर्श द्वारा	90	30.00
एक-दूसरे के वहाँ जाकर	72	24.00
त्योहार/उत्सवों पर नियमित रूप से बुलाकर	54	18.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अधिकांश 30 प्रतिशत महिला उत्तरदाता ने विभिन्न पारिवारिक एवं वैवाहिक समस्याओं में परामर्श लेकर नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध बनाये हुये हैं। 24 प्रतिशत उत्तरदाता एक-दूसरे के यहाँ जाकर, 18 प्रतिशत तीज-त्योहारों पर नियमित रूप से रिश्तेदारों को आमन्त्रित करके, 16 प्रतिशत महिलायें विभिन्न अवसरों पर आवश्कता पड़ने पर एक-दूसरे की सहयता करके तथा 12 प्रतिशत उत्तरदाता दूसरों के द्वारा उनके सम्पर्क में रहकर नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध बनाये हुये हैं।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि विभिन्न पारिवारिक एवं वैवाहिक समस्याओं में परामर्श लेकर एक-दूसरे के यहां आ-जाकर, तीज-त्योहारों पर नियमित रूप से बुलाकर आवश्कयता पड़ने पर एक-दूसरों की सहायता करके तथा दूसरों के द्वारा उनके सम्पर्क में रहकर जैसी तकनीकों के द्वारा नाते-रिश्तेदारों से सहसम्बन्ध बनाने में सहायता मिलती है।

(३) परिवार एवं विवाह सम्बन्धी विशिष्ट मान्यताएँ-

अध्ययन हेतु प्रतिचयनित अनुसूचित जाति महिलाओं की पारिवारिक संरचना का संज्ञान करने के लिये प्राप्त तथ्यों को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा गया है-

1. ऐसी अनुसूचित जाति महिलाएं जो एकांकी तौर पर जीवन-यापन कर रही हैं।
2. ऐसी अनुसूचित जाति महिलाएं जो अपने पति के साथ रह रही हैं।
3. जो अपने पति तथा अविवाहित बच्चों के साथ रहती हैं।
4. विधवाएं एवं उनके अविवाहित बच्चे एक साथ रहते हैं।
5. ऐसी उत्तरदाताऐं जो अपने पति, विवाहित एवं अविवाहित सन्तानों के साथ रहती है।
6. विधवाएं अथवा तलाक शुदा उत्तरदाता जो अपने विवाहित एवं अविवाहित बच्चों के साथ रहती हैं।
7. ऐसी उत्तरदाताएं जो मिश्रित ढंग से परिवारों में रहती हैं अर्थात जिनके साथ परिवार का कोई सदस्य, रिश्तेदार या नौकर आदि रहता है।

इस संदर्भ में संचालित तथ्यों को तालिका संख्या 4.7 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-४.७

उत्तरदाताओं की पारिवारिक व्यवस्था का विवरण

पारिवारिक व्यवस्था	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं (अकेले)	21	07.00
स्वयं एवं पति	54	18.00
स्वयं, पति एवं अविवाहित सन्तानें	69	23.00
स्वयं एवं अविवाहित बच्चे	30	10.00
स्वयं, पति, अविवाहित/ विवाहित बच्चे	51	17.00
स्वयं, पति, विवाहित/ अविवाहित बच्चे	42	14.00
स्वयं एवं मिश्रित परिवार व्यवस्था	33	11.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता अपने पति एवं अविवाहित बच्चों के साथ रहती हैं। जबकि 18 प्रतिशत अपने पति के साथ जीवन-यापन कर रही हैं। 17 प्रतिशत महिलाएं पति एवं अपनी विवाहित/अविवाहित संतानों के साथ 14 प्रतिशत विवाहित/अविवाहित बच्चों के साथ, 11 प्रतिशत मिश्रित परिवार व्यवस्था के साथ जीवन-यापन कर रही हैं। मात्र 7 प्रतिशत उत्तरदाता अकेले रहती हैं। अतः कहा जा सकता है लगभग 68 प्रतिशत महिलाएं केन्द्रीय परिवार व्यवस्था एवं शेष 32 प्रतिशत महिलाएं या तो एकांकी अथवा मिश्रित परिवार व्यवस्था में जीवन-यापन कर रही हैं।

(४) अनुसूचित जाति महिलाएं की अधिसत्ता एवं न्यायिक प्रभाव-

सामान्य तौर पर दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का व्यवस्थित करने तथा उनके सम्बन्ध में निर्णय लेने के प्रस्थापित अधिकार को ही अधिसत्ता (अर्थॉरिटी) कहा जाता

है। यह शक्ति के प्रयोग के प्रमुख रूपों में से एक है जिसमें अनेक व्यक्तिगत मानवीय कर्ताओं की क्रियाओं को आदेशात्मक तरीके से निर्देशित किया जाता है जिससे किसी विशिष्ट लक्ष्य अथवा सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। जबकि किसी व्यक्ति या समूह की अपनी इच्छानुसार दूसरे व्यक्ति या समूहों को परिवर्तित करने की क्षमता का प्रभाव रखते हैं। कतिपय विद्वानों ने शक्ति को ही प्रभाव का रूप माना है। प्रभाव अनुनयात्मक होता है, इसमें शक्ति की भाँति दमन, हिंसा तथा बल प्रयोग का भाव निहित नहीं होता है व्यक्ति प्रभाव के सम्मुख स्वेच्छापूर्वक नतमस्तक हो जाते हैं। जबकि शक्ति व्यक्ति को झुकाने के लिये विवश करती हैं।

मैक्स वेबर (1947) के अनुसार समाज़ में अधिसत्ता विशेष रूप से आर्थिक आधारों पर होती है। यद्यपि आर्थिक कारक अधिसत्ता के निर्धारिण में एकमात्र कारक नहीं कहा जा सकता है। आर्थिक जीवन में एक स्थिर या संस्थागत अर्थ-व्यवस्था समाज के कुछ विशिष्ट वर्ग का अधिकार या अधिसत्ता प्रदान करती है। यह वर्ग अपनी उस अधिसत्ता के बल पर दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व रखता है या उनसे उच्च स्थिति पर आसीन होता है। यह अधिसत्ता तीन प्रकार की होती हैं-

1. वैधानिक सत्ता
2. परम्परागत सत्ता
3. करिश्माई सत्ता

परिवार के संदर्भ में परम्परागत अधिसत्ता का ही उल्लेख मिलता है क्योंकि अधिसत्ता का यह स्वरूप किसी एक व्यक्ति (परिवारीजन) परम्परा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण प्राप्त होती है। चूंकि इस पद का परम्परागत व्यवस्था द्वारा ही परिभाषित किया जाता है। अतः ऐसे पद पर विराजमान होने के आधार पर व्यक्ति को कुछ विशिष्ट अधिकार या अधिसत्ता प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार की अधिसत्ता परम्परा पर आधारित होने के कारण परम्परात्मक आधासत्ता कहलाती है। उदाहरण के

रूप में यदि हम ग्रामीण भारत के अतीत को देखें तो विदित होगा कि कृषि युग में भारतीय ग्रामों में पायी जाने वाली पंचायतों में पंचों की अधिसत्ता (पंच परमेश्वर) परम्परानुसार ही निश्चित होती रही है। इसी तरह पितृसत्तात्मक परिवारों में पिता को जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों में जो अधिकार या अधिसत्ता प्राप्त होती है वह पूर्णतः परम्परानुसार ही होती हैं। पिता की आज्ञा का पालन करना हमारी परम्परा का प्रतीक एवं परिवार की प्रतिष्ठा माना जाता है इसकी कोई लिखित या सीमित व्यवस्था नहीं होती है। प्रत्युत स्वयं परिवार की पुरातन व्यवस्था द्वारा निर्धारत की जाती है। इसी तरह मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था में परिवार के विविध विषयों पर माता का अधिकार सुरक्षित होता है। सामान्यतः हिन्दू परिवारों में माना व पिता को संयुक्त रूप से यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे अपने निर्णय दें एवं अन्य अधीनस्थ परिवारीजन उसको यथागत स्वीकार करें। पिता या माता की मृत्यु के उपरान्त यह अधिकार माता या पिता के पास सुरक्षित रहता रहा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अधिसत्ता दो पक्षों (श्रेष्ठ एवं अधीनस्थ) के मध्य अस्तित्व पाने वाला एक सम्बन्ध ही है। मुखिया जीवन के विविध पक्षों के विषय में यथाशक्ति उचित निर्णय लेकर अपने समस्त अधीनस्थों तक इस प्रत्याशा के साथ सम्प्रेषित करता रहता है कि समस्त अधीनस्थ इन निर्णयों को स्वीकार कर लेगें। यह कार्य मुखिया द्वारा शक्ति या प्रभाव द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस संदर्भ में एडवर्ड शिल्स (1984) का मानना है कि प्राचीन समय में परिवार का मुखिया न केवल पारिवारिक संदर्भों का निर्णय लेता था प्रत्युत उसकी परिवार में अधिसत्ता असंदिग्ध थी। अब परिवर्तन की अनेक प्रक्रियाओं के प्रभाव से इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन लक्षित होने लगा है। बुद्धि, अनुभव आदि के संदर्भ में अब वृद्धों को नयी पीढ़ी की तुलना में पीछे ढकेल रहे हैं। इतना अवश्य है कि मुखिया का बड़ा पुत्र निर्णय लेने का कार्य करने लगा है जिसे परिवार का प्रत्येक सदस्य सामान्य रूप से

अंगीकार कर देता है। तथा यह बड़ा पुत्र अपने द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों के विषय में जहाँ एक ओर अपने वृद्ध पिता को विश्वास में लेता है। वहीं अन्य परिवारीजनों की राय भी जानने का प्रयास करता है।

जहाँ तक अधिसत्तात्मक भारतीय परिवार व्यवस्था का प्रश्न है इस प्रकार के दृष्टिकोण में थोडा अन्तर प्रतीत होता है। ऐसे परिवारों में मुखिया हर संभव यह प्रयास करता है कि उसकी अधिसत्ता असंदिग्ध रूप से अक्षुण्य बनी रहे तथा अपने परम्परागत अधिकार के आधार पर असीमित शक्ति का प्रयोग भी करता है। कारण यह है कि वह अपने को परिवार का संरक्षक मानता है। वास्तविकता यह है कि परिवार में अधिसत्ता एवं शक्ति संरचना वृद्धावस्था, शारीरिक निर्वलता, आर्थिक शक्ति आदि के आधार पर निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और धीरे-धीरे वृद्धों से युवा वर्गों की ओर गतिशील (परिवर्तित) हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न पारिवारिक मामलों का क्रियान्वयन एवं प्रबन्धन उन वरिष्ठ परिवारीजनों को हस्तान्तरित हो जाया करता है जिनका मुखिया एवं अन्य परिवारीजनों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव होता है। इससे वृद्ध माता-पिता को भी प्रसन्नता होती है क्योंकि वे मानते हैं कि उनके बच्चे उनके निर्देशन में एवं उनके सामने ही गृहस्वामी के संचालन हेतु समर्थ हो गये हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसूचित जाति महिला की पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभाव को जानने के लिये पारिवारिक जीवन के कुछ प्रमुख संदर्भों को चुना गया है तथा यह ध्यान रखा गया है कि भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है जिसमें पुरूषों की अधिसत्ता एवं प्रभाव ही परम्परागत रूप से बनी रही है। महिलाओं में विशेष रूप से वे महिलाएं जो परिवार में सबसे वृद्ध या मुखिया की पत्नी के रूप में है उनका भी अधिसत्ता में दूसरा स्थान है। कुछ ऐसी भी महिलाएं उत्तरदाता के रूप में है जो अकेला जीवन-यापन निर्वाह कर रही हैं, उनके सामने भी प्रभुत्व और अधीनता का प्रश्न नहीं है। सामान्य रूप से यह देखने का प्रयास किया गया है कि अभी हिन्दू

जातियों की महिलाओं की तुलना में अनुसूचित जाति महिलाओं को कहाँ तक और किस रूप में अधिसत्ता प्राप्त है। अधिसत्ता का यह पक्ष महिलाओं के समाजिक समायोजन के विश्लेषण करने हेतु उपयोगी चर है। इस संदर्भ में परिवार के महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने की स्थिति, इन निर्णयों में महिलाओं का स्थान, परिवार में अधिसत्ता व प्रभाव स्थापित करने हेतु अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा प्रयुक्त की गयी तकनीकों का विवरण, परिवार के सर्वोत्तम निर्वाचक सदस्य का विवरण, बच्चों के सर्वोगीण विकास हेतु निर्णय लेने वाले सदस्य का विवरण परम्परागत मूल्य-व्यवस्था में होने वाले विचलन के प्रति अनुसूचित जाति महिलाओं के विचार, उनके द्वारा किये गये निर्णयों के प्रति परिवारीजनों की प्रतिक्रियाऐं तथा महिलाओं की अधिसत्तात्मक स्थिति का विवरण आदि वे प्रमुख आधार बिन्दु हैं जिनके विषय में अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा तथा संकलित किये गये।

अनुसूचित जाति महिलाओं की दृष्टि में उनकी पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभाव-

इस जिज्ञासा से स्वयं अनुसूचित जाति महिलाएं अपनी पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभाव के बारे में क्या विचार रखती हैं? इसी आशय से उनके समक्ष तीन विकल्प प्रस्तुत कर अपनी अधिसत्तात्मक स्थिति को अभिव्यक्त करने का अनुरोध किया गया है इस संदर्भ में उन्होंने जो तथ्य प्रस्तुत किये उन्हें तालिका संख्या 4.8 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-४.८

उत्तरदाताओं के अनुसार उनकी पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभाव की स्थिति

अधिसत्ता एवं प्रभाव की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
सुदृढ़ अधिसत्ता एवं प्रभाव	156	52.00
कमजोर अधिसत्ता एवं प्रभाव	90	30.00
अधिसत्ता एवं प्रभावहीन स्थिति	54	18.00
कुल योग	300	100.00

तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि 52 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएं यह विश्वास व्यक्त करती हैं कि उनके परिवार में पूर्ण (सुदृढ) अधिसत्ता एवं प्रभाव है जो परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता के अस्तित्व एवं स्थायित्व का प्रतीक है। इसके विपरीत 30 प्रतिशत ऐसी उत्तरदाता हैं जो यह स्वीकार करती हैं कि आधुनिक जटिल परिवेश में उनके परिवार में अधिसत्ता एवं प्रभाव अपेक्षाकृत कमजोर (अपूर्ण) प्रकृति का है। जबकि शेष 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएं यह मानती हैं कि परिवार में उनकी स्थिति सत्ताएवं प्रभावहीन जैसी है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश उत्तरदाता (52 प्रतिशत) के अनुसार परिवार में उनकी पूर्ण अधिसत्ता एवं प्रभाव है जबकि 48 प्रतिशत इसके विपरीत स्थिति प्रकट करती है। अनुसूचित जाति महिलाओं की सबल अधिसत्ता एवं प्रभाव का कारण ऐसी महिलाओं का परिवार के सदस्यों के प्रति दृष्टिकोण, व्यवहार, जीवन आदर्श नियन्त्रण की विधियाँ आदि के साथ-साथ वे तौर-तरीके हैं जो न केवल परम्परात्मक पारिवारिक अधिसत्ता को अक्षुण्य बनाये रखने हेतु उपयोगी होते हैं प्रत्युत पारिवारिक सामाजिक समन्जन हेतु अनिवार्य माने जाते हैं।

<u>परिवर्तित मूल्य व्यवस्था के प्रति अनुसूचित जाति महिलाओं का दृष्टिकोण-</u>

परिवार का पुरातन स्वरूप संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से परिवर्तित होता जा रहा है। पारिवारिक सदस्यों के मध्य विशेषीकरण की स्थिति प्रभुत्व मूलक बनकर प्रस्थिति और भूमिका अर्थात कर्त्तव्यों और अधिकारों की सनातन मान्यताओं को शिथिल करने लगी है। अब परिवार में अधिसत्तात्मक प्रतिमान मात्र प्रभाव और संविदा पर आधृत लक्षित होने लगे हैं। परिवार का यह परिवर्तनशील परिदृश्य महिलाओं के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म दे रहा है। प्रतिदर्श में शामिल उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि वे परम्परागत मूल्यों से हटकर लिये जाने वाले निर्णयों के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाती है? इस संदर्भ में उनके द्वारा जो विचार दिये गये उन्हें तालिका संख्या 4.9 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-४.९

परम्परागत मूल्य-व्यवस्था में होने वाले विचलन के प्रति अनुसूचित जाति महिलाओं के विचार

उत्तरदाताओं के विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
बिना शर्त मान्यता देती है	147	49.00
कुछ शर्तों के आधार पर मान्यता देती है	120	40.00
किसी भी शर्त पर परम्परागत मूल्यों के उल्लंघन को स्वीकार नहीं करती।	33	11.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 49 प्रतिशत महिलायें परम्परागत मूल्यों से हटकर किये जाने वाले व्यवहार को बिना शर्त मान्यता दे देती है जबकि 40 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसी है जो कि कुछ विशिष्ट शर्तों के आधार पर परम्परा से हटकर किसी भी ऐसे कार्य को मान्यता नहीं देती हैं जो परम्परागत मान्यताओं के प्रतिकूल हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि इस श्रेणी में प्रायः वृद्ध महिला उत्तरदाता एवं अन्धविश्वासी तथा परम्परावादी उत्तरदाता शामिल है जो अपने हठवादी व्यवहार से विवश होकर मान्यता नहीं देती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परिवार में अपना प्रभुत्व और अधिसत्ता बनाये रखने तथा इज्जत से शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये अधिकांश महिलायें परम्परावादी मूल्यों में होने वाले परिवर्तन को भी पारिवारिक स्तर पर स्वीकार कर लेती है।

(५) महिलाओं की जैविकीय इच्छाएं/आवश्यकतायें-

व्यक्ति की सार्वभौमिक इच्छाओं में उसकी जैविकीय इच्छाएं अथवा आवश्यकतायें अति महत्वपूर्ण होती हैं। कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ

मस्तिष्क निवास करता है। जैविक आवश्यकतायें व्यक्ति की मौलिक आवश्यकतायें होती हैं। महिलाओं के सन्दर्भ में विशेषकर भारतीय समाज में महिलाओं को जिन्हें घर की चार दिवारी तक ही सीमित रखा गया। ऐसा पाया गया कि महिलायें अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुरूषों पर ही निर्भर रही हैं। निर्भरता के कारण उनकी इच्छाऐं आधिकांश दमित ही रह जाती हैं। परिणामस्वरूप उनमें शारीरिक/मानसिक व्याधियाँ तथा कुण्ठाएं उत्पन्न होती हैं। स्वाभाव में चिड़चिडापन आदि की प्रवृत्ति का विकास होने लगाता है। भूख और प्यास नैसर्गिक आवश्यकतायें हैं इसी प्रकार लैगिंक संस्तृप्ति भी स्वस्थ मनोदशा के यह आवश्यक कारक है। भारत में ग्रामीण अशिक्षित तथा अनुसूचित जाति की महिलायें विशेष रूप से अपनी जैविक इच्छाओं की पूर्ति के लिये जद्दोजहद करती नजर आती हैं।

इस सन्दर्भ में प्रतिदर्श में शामिल अनुसूचित जाति महिलाओं से उनकी जैविक इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है या नहीं के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया। उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 4.10 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-४.१०

जैविक इच्छाएं/आवश्यकताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
जैविक इच्छाओं/आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है	168	56.00
जैविक इच्छाओं/आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती हैं	132	44.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश 56 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं की जैविक इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है इसके विपरीत 44 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं ने असंतुष्टि का ही प्रयोग किया।

यहाँ उल्लेखनीय है कि वे महिलाएं जिन्होंने अपनी जैविक इच्छाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति का न हो पाना बताया है उनका मानना है कि इसके बाबजूद भी पारिवारिक संगठन एवं मर्यादा को बनाये रखने के लिये संयम तथा आवश्यकताओं का न्यूनीकरण उनके द्वारा किया जाता है। अभावग्रस्तता में दुःख तथा कष्ट की अनुभूति तो होती है किन्तु परिवार की मर्यादा के लिये समायोजन करना ही पड़ता है।

महिलाओं की जैविकीय इच्छाओं/आवश्यकताओं की पूर्ति में आने वाली कठिनाइयों के बावजूद भी समाजिक समायोजन करना पड़ता है। समायोजन के प्ररिप्रेक्ष्य में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि वे किस तरह से इन अभावों में समायोजन करती है? इसके प्रत्युत्तर में उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 4.11 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-४.११

स्वस्थ समायोजन हेतु महिलाओं के प्रयास का विवरण

प्रयास	आवृत्ति	प्रतिशत
अधिक दौड़ भाग न करके शन्तिपूर्वक घर ही रहना	168	56.00
परिवारीजनों के क्रिया-कलापों में सहयोग करना	120	40.00
भोजन में जो मिल जाये उसी से संतुष्ट होना	216	72.00
मित्रों रिश्तेदारों के अतिथि भार को परिवार पर न डालना	78	26.00
हर हालत में प्रसव रहने का प्रयास करना	156	52.00

नोट- खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं होगा।

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं का प्रयास होता है कि मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में जो भी मिल जाये उसे सम्मान पूर्वक स्वीकार कर लेना सबसे अधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक होता है। 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि अधिक भाग दौड़ से कोई फायदा नहीं होता इसलिये शान्तिपूर्वक घर में रहना ही श्रेयष्कर होता है। 52 प्रतिशत उत्तरदाता हालात से समझौता करने के फलस्वरूप हर हाल में प्रसन्न रहने को ही उचित माना है। 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुये परिवारीजनों के क्रिया कलापों में सहयोग के द्वारा समायोजन को स्वीकार किया है सबसे कम 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने परिवार पर आर्थिक बोझ न बने इसलिये अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को बहुत अधिक बुलाये जाने से परहेज रखते हैं।

अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि संतोषपूर्वक मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने, शान्ति से घर में रहना, हमेशा प्रसन्न रहना, दूसरों का सहयोग करना स्वस्थ समायोजन हेतु उपयोगी प्रतीत होता है।

(६) गृहस्थी के निष्पादन में महिलाओं की भूमिका-

भारतीय समाज में परम्परानुसार गृहणी को ही गृहस्थी के अनेकानेक उत्तरदायित्वों के निष्पादन का भार उठाना पड़ता है। घर के बाहर के समस्त कार्य पुरूष को तथा घर के अन्दर के समस्त कार्यों का संचालन महिला वर्ग के अधिकार क्षेत्र में रहा है। यदि गृहस्थी का संचालन परम्परानुसार तथा सुव्यवस्थित तरीके से होता रहता है तो इससे न केवल परिवार प्रत्युत महिलाओं को भी आदर्श एवं प्रतिष्ठित माना जाता है। साथ ही इसे पारिवारिक सुख सम्मृद्धि का प्रतीक भी माना जाता है। गृहस्थी के दायित्वों का सम्पादन अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी की महिलाओं के हाथ होता है। वृद्ध महिलायें अपने अनुभवों के आधार पर युवा महिलाओं को मार्ग निर्देशन प्रदान करती हैं। सम्पन्न परिवारों की महिलायें गृहस्थी के कार्यों का सम्पादन नौकरों

से कराने में अपनी प्रतिष्ठा मानने लगती हैं जो कभी-कभी घातक सिद्ध होने लगता है। इससे युवा पीढ़ी आलसी, रोगी, निराश्रित, पराश्रित, एवं अनुभवहीन होकर अनेक कठिनाइयों का सामना करती हैं।

सामान्यतया महिलाओं का गृहस्थी से सर्वाधिक लगाव होता है। गृहस्थी का निष्पादन करने वाली महिलाओं का गृहस्थी पर नियन्त्रण बना रहता है तथा उनकी परम्परागत पारिवारिक मूल व्यवस्था के आधार पर गृहस्थी का संचालन होता रहता है।

अध्ययन के दौरान प्रतिदर्श में शामिल सभी उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि गृहस्थी के विविध दायित्वों के निर्वहन में वे अपनी भूमिका स्पष्ट करें? इस संदर्भ में जो तथ्य उभर कर सामने आये उन्हें विश्लेषण हेतु तालिका संख्या 4.12 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-४.१२

गृहस्थी के सम्पादन में उत्तरदाताओं की भूमिका का विवरण

गृहस्थी के उत्तरदायित्व	आवृत्ति	प्रतिशत
भोजन सम्बन्धी उत्तरदायित्व	216	72.00
स्वच्छता सम्बन्धी उत्तरदायित्व	198	66.00
शिशुओं की देख-रेख सम्बन्धी उत्तरदायित्व	174	58.00
गृहस्थी के रख-रखाव सम्बन्धी उत्तरदायित्व	246	82.00
युवा पीढ़ी को प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व	168	56.00
बुजुर्ग पीढ़ी के सेवा का उत्तरदायित्व	156	52.00

नोट- खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं होगा।

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि-

1. अनुसूचित जाति महिलाओं का 72 प्रतिशत हिस्सा यह स्पष्ट करता है कि उन्हें भोजन सम्बन्धी दायित्वों का निर्वाह करना पडता है इस दायित्व के अन्तर्गत यथा रूचिकर भोजन या परिस्थति के अनुसार गुजारे वाला भोजन बनाना एवं उसका समुचित वितरण ही प्रमुख है। प्रायः सुबह का नाश्ता, दोपहर का भोजन (लंच) तथा शाम का भोजन (डिनर) अनिवार्य है। तथा समय-समय पर आने जाने वाले अतिथियों आदि का स्वागत (चाय आदि) करना भी सम्मिलित है। इसके साथ स्कूली बच्चों एवं नौकरी/मजदूरी करने वालों या दुकान आदि पर काम करने वालों को टिफेन की व्यवस्था भी करनी पड़ती है।
2. गृहस्थी में स्वच्छता सम्बन्धी दायित्वों का निर्वहन 66 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं को स्वयं करना पड़ता है। इसमें भोजन या नाश्ता करने के बाद जूठे वर्तनों की सफाई, घर-गृहस्थी में प्रयुक्त किये जाने वाले विविध प्रकार के गन्दे (मैले) वस्त्रों की सफाई धुलाई तथा आवास की स्वच्छता आदि प्रमुख है।
3. निदर्श में शामिल 58 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्पष्ट किया कि उन्हें शिशुओं की देख-रेख सम्बन्धी दायित्वों का निर्वाह करना पडता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि परिवार में बुजुर्ग महिला सदस्य अगर है तो वे भी शिशुओं का देखभाल करती हैं जो कि ''मूल धन से ब्याज प्यारा होता है।'' कहावत को साकार करने जैसी है। वृद्ध महिलाओं द्वारा शिशुओं के लालन-पालन, उनकी रूचियों, प्रसन्न करने के उपायों, रोगों, स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रियाओं आदि से सम्बन्धित अधिक अनुभव होता है। साथ ही वृद्ध महिलाओं का आत्मीय लगाव छोटे बच्चों से ज्यादा होता है। अतः वे इस कार्य को युवा महिला की तुलना में अधिक सफलतापूर्वक कर लेती हैं। वृद्ध महिलाओं द्वारा

देखभाल किये जाने से युवा महिलाओं को घर गृहस्थी के अन्य कार्य सम्पादन हेतु समय भी मिल जाता है। जिससे पारिवारिक सौहार्द में भी वृद्धि होती है।

4. अधिकांश 82 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं ने स्वीकार किया कि वे गृहस्थी के रखरखाव सम्बन्धी कार्यों का निष्पादन करती रहती हैं। यह माना जाता है कि जो गृहणी सद्गुणी होती है उसकी गृहस्थी में कभी भी किसी चीज की कमी नहीं रहती, इसके विपरीत होने पर गृहस्थी में किसी न किसी चीज का अभाव ही बना रहता है जो कलह, अविश्वास, विघटन, अपवित्रता एवं संघर्श का प्रमुख आधार होता है। इसलिये अधिकांश महिलायें गृहस्थी के संचालन हेतु जरूरी वस्तुओं का संग्रह, वितरण एवं उपयोग सम्बन्धी योजना को मूर्त रूप देती रहती है। आमदनी एवं स्तर के अनुसार उपर्युक्त वस्तुओं का जुटाना, अधिक कुशलता पूर्वक उपलब्ध गृहस्थी से परिवारीजनों का पालन-पोषण कर, सभी की पसन्द, नापसन्द का ध्यान रखना आदि गृहणी के मुख्य दायित्व होते हैं।

5. 56 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने स्पष्ट किया वे युवा पीढ़ी को घर गृहस्थी के विविध मामलों में प्रशिक्षित करने सम्बन्धी दायित्वों का निर्वाह करती हैं। सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि नवविवाहिता जिस परिवार से आती है उसकी परम्परागत जीवन शैली और इस नवीन परिवार (ससुराल) की जीवन विधि में बहुत अन्तर एवं विसंगतियाँ हो सकती हैं। जैसे तीज त्योहारों को मनाने की मान्यतायें एवं विधियाँ आदि। इनका सही-सही ज्ञान परिवार की अपेक्षाकृत वृद्ध महिलाओं को ही होता है। जिसे समय-समय पर युवा पीढ़ी (बहूओं) को बताती रहती हैं। इसके साथ-साथ बहू, विवाह पूर्व कन्या रूप में होती हैं। अतः वह गृहस्थी के कार्यों से तटस्थ एवं अनभिज्ञ प्रायः होती है। पत्नी बनने के उपरान्त उसे अपनी सास से गृहस्थ जीवन के विविध पक्षों का

प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है। अतः वृद्ध महिलायें प्रशिक्षण देने का दायित्व निर्वहन करती हैं।

6. 52 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया में बताया कि उन्हीं के ऊपर बुजुर्ग पीढ़ी (सास, ससुर) एवं अन्य सदस्यों की सेवा का उत्तरदायित्व भी है। परिवार में वृद्ध सदस्यों के होने का जहाँ पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह में युवा पीढ़ी को सुविधायें प्राप्त होती हैं। वहीं वृद्ध सदस्यों को भी शारीरिक दुर्बलता, बीमारी, असहायता आदि की स्थिति में युवा पीढ़ी से सहायता प्राप्त होती है। उत्तरदाताओं ने स्पष्ट किया कि गृहस्थी की अन्य व्यस्तताओं के बावजूद भी वृद्ध सदस्यों की देखभाल करना उनकी नैतिक जिम्मेदारी है। इस कारण उनकी सेवा भाव के दायित्व का निर्वहन उनके द्वारा किया जाता है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलायें गृहस्थी के रख-रखाव स्वच्छता सफाई युवा पीढ़ी का प्रशिक्षण, शिशुओं की देखभाल, भोजन बनाना एवं उनका वितरण एवं बुजुर्ग सदस्यों की देखभाल सम्बन्धी गृहस्थी के विविध दायित्वों का निर्वाह करती है।

(७) आर्थिक नियन्त्रण एवं प्रबन्धन में महिलाओं की स्थिति-

सम्पति को एक ऐसी दूरी के रूप में माना जाता है जिसके इर्द-गिर्द समस्त पारिवारिक मामले घूमते रहते हैं परिवार का वातावरण स्वयं परिवार के आर्थिक स्थिति पर आधारित होता है। सामान्यतः यदि परिवार की आर्थिक स्थिति इनती सुदृढ़ होती है कि पारिवारिकजनों की आवश्यकतायें एवं इच्छायें सरलतापूर्वक पूर्ण होती रहती हैं तो परिवारीजनों के मध्य स्वस्थ सम्बन्ध बने रहते हैं जिससे पारिवारिक वातावरण स्वस्थ बना रहता है इसके विपरीत निर्धनता प्रायः अस्वस्थ पारिवारिक वातावरण एवं सम्बन्धों का आधार व कारण मानी जाती हैं। आजतक व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी

युग में धन व सम्पत्ति का महत्व बढ़ता जा रहा है जिससे पारिवारिक स्तर पर वित्तीय नियन्त्रण एवं प्रबन्धन का कार्य अत्यन्त जटिल एवं कठिन होता जा रहा है।

परम्परानुसार भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था में वित्तीय नियंत्रण एवं प्रबन्धन का दायित्व परिवार के वृद्ध व्यक्ति (मुखिया) पर केन्द्रित होता है। यह उसका प्रमुख पारिवारिक दायित्व था कि वह एक कुशल गृहस्थ के रूप में आय के अनुसार परिवार के सभी सदस्यों की आधार भूत आवश्कयताओं की प्रतिपूर्ति करे। किन्तु गृहस्थी के संचालन का दायित्व प्रायः गृहणियों पर होता है। इस अर्थ में एक महिला की पारिवारिक वित्तीय नियन्त्रण एवं प्रबन्धन में अपनी अहूम भूमिका निर्वाह करती रही है। वह परिवार की सभी महिलाओं बहू, बेटियाँ, बच्चों आदि की इच्छाओं के अनुरूप उन्हें यथाशक्ति संतुष्ट रखने का प्रयास करती है।

इस स्थिति का मूल्यांकन करने के लिये प्रतिदर्श में सम्मिलित अनुसूचित जाति महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि परिवार की आर्थिक नियन्त्रण एंव प्रबन्धन में उनकी क्या स्थिति है प्राप्त तथ्यों को संकलित कर विश्लेयषण के लिये तालिका संख्या 4.13 प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-४.१३

पारिवारिक आर्थिक नियन्त्रक एवं प्रबन्धक का विवरण

वित्तीय नियन्त्रक एवं प्रबन्धक	आवृत्ति	प्रतिशत
परिवार का वृद्ध व्यक्ति (पुरुष)	27	09.00
परिवार की वृद्ध महिला	18	06.00
परिवार का वृद्ध पुरुष व महिला	42	14.00
विवाहित बच्चे एवं उनकी पत्नियाँ	186	62.00
समस्त परिवारीजन	27	09.00
कुल योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उनके परिवार का आर्थिक नियन्त्रक एवं प्रबन्धक परिवार का वृद्ध पुरूष है। जबकि मात्र 6 प्रतिशत वृद्ध महिलायें प्रबन्धक के रूप में हैं 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार परिवार के वृद्ध दम्पत्ति नियंत्रक एवं प्रबन्धक के रूप में है मात्र 9 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि परिवार के सभी सदस्य मिलजुलकर कार्य करते हैं। उसके विपरीत अधिकांश 62 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता यह व्यक्त करती है कि आज के जटिल युग में परिवार के वित्तीय नियंत्रण एक प्रबन्धन का दायित्व विवाहित बच्चों एवं उनकी पत्नियों पर संयुक्त रूप से है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश परिवारों में वित्तीय नियंत्रण एक प्रबन्धक का अधिकार विवाहित युवा पीढ़ी के सदस्यों को है जो परम्परागत अधिसत्ता में होने वाले बदलाव का प्रतीक है।

(८) पारिवारिक निर्णय में महिलाओं की सहभागिता-

पारिवारिक निर्णयों में सामान्यतया पुरूषों को अधिसत्ता प्राप्त है पिता के रूप में गृहस्वामी अथवा बड़े पुत्र को निर्णय लेने में महती भूमिका रहती है। अनुसूचित जातियों की महिलाओं की इस तथ्य के प्रति क्या दृष्टिकोण है? यह जानने का प्रयास किया गया है। साथ ही पारिवारिक निर्णय लेने में इनकी क्या स्थिति है? इस पर भी प्रतिक्रिया ली गई। इस संदर्भ में जो विचार व्यक्त किये गये उन्हें संकलित कर तालिका संख्या 4.14 में प्रस्तुत किया गया-

तालिका संख्या-४.१४

पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में उत्तरदाताओं के स्थान की स्थिति

निर्णय लेने वाला व्यक्ति	आवृत्ति	प्रतिशत
निर्णय लेने में उचित स्थान है	246	82.00
निर्णय लेने में कोई स्थान नहीं है	54	18.00
कुल योग	300	100.00

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 82 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएं यह मानती हैं कि पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में उन्हें अपेक्षाकृत उच्च स्थान प्राप्त हैं जबकि 18 प्रतिशत महिलाएं यह स्वीकार करती हैं कि परिवार के विभिन्न मामलों में जो निर्णय लिये जाते हैं उनमें उन महिलाओं का कोई स्थान नहीं है। ऐसा उनकी पारिवारिक जटिलताओं एवं विषमताओं के कारण ही है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाओं का पारिवारिक निर्णय लेने में उच्च स्थान है जो परम्परागत मान्यताओं को ही प्रतिबिम्बित करता है।

अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा लिये गये निर्णयों के प्रति पारिवारीजनों के प्रतिक्रियाओं की स्थिति-

भारतीय समाज का परम्परागत स्वरूप इस तथ्य पर बल देता है कि पारिवारिक निर्णय लेने वाले व्यक्तियों द्वारा लिये गये निर्णयों को शेष सभी पारिवारिक सदस्यों द्वारा स्वीकार किया जाना पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं सुख समृद्धि हेतु उपयोगी होता है। आधुनिक समय में इस मान्यता का परीक्षण करने हेतु प्रतिदर्श में शामिल महिलाओं से उनके विचार जानने का प्रयास किया। प्राप्त विचारों को पांच विकल्प श्रेणियों में वर्गीकृत करके तालिका संख्या 4.15 में प्रस्तुत किया गया-

तालिका संख्या-४.१५

उत्तरदाताओं के निर्णयों पर परिवारीजनों की प्रतिक्रियाओं का वर्गीकरण

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्णतः स्वीकार कर लेते हैं	60	20.00
आंशिक संशोधन के बाद स्वीकारते हैं	156	52.00
कभी स्वीकार कभी अस्वीकार करते हैं	51	17.00
कभी स्वीकार ही नहीं करते हैं	21	07.00
ऐसा अवसर ही नही आता	12	04.00
कुल योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि 20 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि उनके द्वारा लिये गये निर्णयों को परिवारीजन यथावत स्वीकार कर लेते हैं। यहां उल्लेखनीय है कि इनमें वे महिलाएं सम्मिलित हैं जो विधवा की स्थिति में अकेली रहती हैं अथवा वे महिलाएं जो उच्च शिक्षा प्राप्त एवं अच्छी नौकरी कर रही हैं। सबसे अधिक 52 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्पष्ट करती हैं कि आंशिक संशोधन के उपरान्त (यदि आवश्यक होता है तो) उनके द्वारा लिये गये निर्णयों को उनके परिवारीजन स्वीकार कर लेते हैं। इसके विपरीत 17 प्रतिशत उत्तरदाता अस्पष्टता की स्थिति व्यक्त करती हैं क्योंकि उनके निर्णयों को कभी स्वीकार अथवा कभी अस्वीकार कर दिया जाता है। जबकि 07 प्रतिशत अनुसूचित जाति उत्तरदाता यह मानती है कि उनका परिवार में कोई स्थान नहीं है इसीलिये उनके किसी भी निर्णय को कभी भी स्वीकार नहीं किया जाता। यहां उल्लेखनीय है कि इस श्रेणी में प्रायः अविवाहित

उत्तरदाता शामिल हैं जो स्वयं परिवारीजनों पर आश्रित हैं। 04 उत्तरदाता बडे दुःख के साथ यह स्पष्ट करते पायी गयी कि उन्हें कभी भी ऐसा सुअवसर नहीं मिलता कि वे अपना निर्णय दें क्योंकि वे अनाथ की स्थिति में जीवन-यापन कर रही हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा लिये गये पारिवारिक निर्णयों को यथावत स्वीकार न करके आधुनिक संदर्भों के अनुकूल परिवारीजनों द्वारा उनमें यथासम्भव आंशिक संशोधन करके स्वीकार कर लिया जाता है। जो परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता के परिवर्तन का प्रतीक है।

(९) क्षेत्र के बाहर महिलाओं की सहभागिता एवं कार्य-

प्रायः यह देखा गया है कि महिलाओं की पारिवारिक परिस्थिति में गिरावट उसके निर्णय लेने की अधिसत्ता में होने वाले परिवर्तन से स्पष्ट हो जाती है। इसी तथ्य को जानने के लिये अनुसूचित जाति महिलाओं से यह आग्रह किया गया कि उनके पारिवारिक मामलों का निर्णय किसके द्वारा लिया जाता है? इस संदर्भ में जो सूचनायें प्राप्त हुई हैं। उन्हें विभिन्न श्रेणियों में विभक्त कर तालिका संख्या 4.16 में प्रदर्शित किया गया।

तालिका संख्या-४.१६

परिवार के महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने वाला सदस्य

निर्णय लेने वाला व्यक्ति	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं उत्तरदाता द्वारा	54	18.00
स्वयं तथा उसके पति द्वारा	63	21.00
स्वयं पति एवं बच्चों द्वारा	108	36.00
समस्त परिवारीजनों द्वारा (सामूहिक तौर पर)	57	19.00
केवल परिवारीजनों द्वारा	18	06.00
कुल योग	300	100.00

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 36 प्रतिशत अनुसूचित जाति उत्तरदाता यह मानती हैं कि उनके पारिवारिक निर्णय पति-पत्नी एवं समस्त बच्चों द्वारा मिलकर लिये जाते हैं जबकि 21 प्रतिशत परिवारों में निर्णय लेने का अधिकार मात्र माता-पिता के पास सुरक्षित रहता है। 19 प्रतिशत उत्तरदाता जो प्रायः विधवाएँ/तलाकशुदा हैं यह स्वीकार करती हैं कि पति की अनुपस्थिति के कारण यह आवश्यक एवं उपयोगी है कि पारिवारिक निर्णय सभी सदस्यों की आम राय से लिया जाय। इसके विपरीत 18 प्रतिशत महिलाओं ने व्यक्त किया कि परिवार के महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने का अधिकार स्वयं उनके पास सुरक्षित है मात्र 6 प्रतिशत उत्तरदाता ही ऐसी हैं जो यह मानती हैं कि परिवार में उन्हें नगण्य मानकर इस योग्य नहीं समझा जाता कि वे पारिवारिक निर्णयों में अपना योगदान करें इसलिये निर्णय मात्र परिवारीजनों द्वारा ही लिये जाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ ऐसी महिलाएं हैं जो न केवल अपने बच्चों बल्कि अपने पति पर भी प्रभुत्व स्थापित किये हुये हैं। उनका समस्त परिवारीजनों पर ऐसा प्रभाव है कि उनके द्वारा किये गये निर्णय ही अन्तिम होते हैं तथा कुछ ऐसी भी अनुसूचित जाति महिलायें हैं जो किसी भी निर्णय में अपनी सहमति व्यक्त करना ही पुनीत कर्तव्य समझती हैं। वे राग-द्वेष रहित सरल स्वभाव वाली है। इसलिये समस्त परिवारीजन उनका अधिकाधिक सम्मान करते हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कुछ अनुसूचित जाति महिलाओं को छोड़कर अधिकांश महिलाएं परिवार के महत्वपूर्ण मामलों में निर्णायक सदस्य की भूमिका का निर्वाह करती हैं। अर्थात् परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता उनके पास सुरक्षित हैं क्योंकि वे जनतांत्रिक तरीके से ही निर्णय लेने में विश्वास रखती हैं। यदि परिवारीजन भी निर्णय लेते है तो भी इनकी सहायता, राय, निर्देशन द्वारा ही करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) वर्जेस ई.डब्लू एवं लॉक एच.जे. (1963) : द फेमिली, अमेरिका बुक, न्यूयार्क।

(2) गौर, एम.एस. (1968) : ऑर्गनाइजेशन एण्ड फेमिली जेज, पायुलर प्रकाशन, बम्बई।

(3) सिंह, योगेन्द्र (1973) : मॉर्डनाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेकिशन, थामसन प्रेस, नई दिल्ली।

(4) मैक्सबेवर (1947) : द प्योरी आफ संरक्षक एण्ड इकोनामिल ऑर्गनेइनेशन, ट्रान्सलेरेड बाई

अध्याय - 5

महिलाओं की समस्याएँ एवं परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था :

- परम्परागत रीति रिवाजों को मानने की समस्या
- सामाजिक–आर्थिक समस्या
- प्रभुत्व अस्तित्व एवं अधिसत्ता की समस्या
- सामाजिक जीवन में अनुभव व बोधगम्यता की समस्या
- महिलाओं में पुरूषों के समान प्रस्थिति निर्धारण की समस्या
- महिलाओं द्वारा वैधानिक व्यवस्था की जानकारी की समस्या
- समस्याओं के निवारण हेतु परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था की प्रासंगिकता

अध्याय-5

महिलाओं की समस्याएँ एवं परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था-

सामाजिक समस्या मानव सम्बन्धों की वह समस्या है जो समांज को संकट में डालती है या कई लोगों की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं को प्राप्त करने में रुकावट पैदा करती है। भारतीय समाज में आज भी संयुक्त परिवार व्यवस्था के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है तथा समाज की प्रकृति भी पुरुष प्रधान समाज की है। इस समाज में पुरुषों को महिलाओं पर अधिसत्ता प्राप्त है। महिलाएँ आज भी घर की चार दीवरी तक सीमित रखी जा रही हैं। परम्परागत रूप से महिलाएँ अनुगामी रूप में, सहायक की भूमिका में ही देखी जाती रही हैं। सामाजिक संगठन में उनके योगदान को कमजोर ही माना जाता है। उन्हें अबला, कमजोर, असहाय, दलित, शर्मीली आदि समझकर उनके कार्यक्षेत्र को सीमित रखने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के अधिकार से उन्हें वंचित किया जाता है। किन्तु सामाजिक परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं से अब भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं ढाँचा परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं जिससे भारतीय मूल्य व्यवस्था (परम्परागत नैतिक आचार व्यवस्था) भी औद्योगिक नैतिक आचार व्यवस्था में निरन्तर बदलती जा रही है।

भारतीय सामाजिक संस्थाएँ- संयुक्त परिवार, जाति, ग्रामीण धर्म व शिक्षा धीरे-धीरे अस्तित्वहीन होती जा रही है। हमारे भारतीय समाज का यह परिवर्तित परिदृश्य ही अनेक जटिल प्रवृत्ति की समस्याओं को उत्पन्न कर रहा है। यह स्थिति महिलाओं को विशेष रूप से अनुसूचित जाति महिलाओं को व्यथित कर रही हैं। इसी प्रकार शनैः शनैः अनेकानेक समस्याएँ महिलाओं पर आक्रमण करती रही हैं जिससे

एक विशिष्ट प्रकार का अस्वस्थ पारिवारिक पर्यावरण सृजित होने लगता है। अनुसूचित जाति परिवारों में समय के साथ आने वाले बदलावों ने इन महिलाओं के समक्ष नई-नई समस्याओं का सृजन किया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण पाश्चात्य मूल्यों का बढ़ता हुआ प्रभाव, शिक्षा का बढ़ता स्तर, रोजगार के बढ़ते अवसर आदि के द्वारा परम्परागत प्रस्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन आने लगा है। परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति महिलाओं में पारिवारिक समायोजन की समस्या उत्पन्न होने लगी है। अनुसूचित जाति महिलाओं की समस्या अनेक रूपों में दृष्टिगत हो रही है- कामकाजी महिला के रूप में, वृद्धावस्था के रूप में, गृहस्थी के संचालन के रूप में, पुरुषों की अधीनता के रूप में जैवकीय इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में, निर्णय लेने के अधिकार की समस्या के रूप में आदि।

चौधरी डी. पाल (1992)[1] ने महिलाओं के जीवन को समस्या मूलक बनाने हेतु निम्नलिखित प्रमुख कारकों का उल्लेख किया है :-

(1) शारीरिक परिवर्तन, मानसिक एवं कायिक शक्ति में निरन्तर गिरावट आयी
(2) आधुनिक शिक्षा एवं युवा पीढ़ी की कार्य पद्धति
(3) औद्योगीकरण एवं नगरीय जीवन का प्रभाव
(4) व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण
(5) संतति-अन्तराल एवं संयुक्त परिवार व्यवस्था का टूटना
(6) खर्चीला रहन-सहन तथा सामाजिक सुरक्षा के उपायों की कमी
(7) नगरीय क्षेत्रों में आवास की अपर्याप्तता तथा असहानुभूतिपूर्ण वातावरण
(8) युवा पीढ़ी का पलायन
(9) महिलाओं को पुरुषों के समान रोजगार की सुलभता
(10) नौकरी, प्रस्थिति, संपत्ति, शारीरिक क्षमता आदि में होने वाले नुकसान के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्वों का बढ़ता दबाव आदि।

उपयुक्त स्थितियों या कारक प्रायः महिलाओं के जीवन में निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न करते हैं :-

(1) शारीरिक समस्याएँ- असमर्थता (अयोग्ता) एवं गम्भीर व्याधियाँ आदि।

(2) देखरेख एवं चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, कायिक शैथिल्य व अपंगता से घृणात्मक व तिरस्कृत जीवन आदि।

(3) अनेकानेक आर्थिक समस्याएँ

(4) सन्तानों द्वारा वृद्ध महिलाओं की देखभाल से मुकरना तथा सम्पत्ति आदि के विक्रय हेतु मजबूर करने के साथ-साथ उन्हें उनकी इच्छाओं में परिवर्तन करने हेतु विवश करना।

(5) मनोवैज्ञानिक समस्याएँ- असमायोजन की समस्या, एकान्तता आदि।

(6) संवेगात्मक समस्याएँ- अपने परिवारीजनों से अलग रहने की समस्या तथा उनसे अन्तःक्रियाएँ न कर पाने की समस्या।

(7) सामाजिक समस्याए आदि- बच्चों के पालन पोषण, कुपोषण, परिवार एवं विवाह जनित समस्याएँ आदि।

बीसवीं सदी को महिला जागरण का युग कहा जाता है। महिलाओं के संगठित आन्दोलन हर दिशा में हो रहे हैं। अपने नागरिक अधिकारों के लिए वे लड़ रहीं हैं। समाज और परिवार में सुरक्षित स्थिति के लिए रोजगार और आत्म निर्भरता के लिए महिला कर्मचारियों की आर्थिक सुरक्षा के लिए कानून पारित कराये ज़ा रहे हैं। घरों और बच्चों की सुरक्षा के लिए विनाशक युद्धों के खिलाफ और विश्व शन्ति के पक्ष में आवाज उठाई जा रही है। परिवार कल्याण और बाल कल्याण की योजनाएँ चलाई जा रहीं हैं। पीड़ित महिलाओं के लिए संरक्षणात्मक उपाय काम में लाये जा रहे हैं। महिला उत्थान के विशेष कार्यक्रमों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय महिला-दशक मनाया जा रहा है।

एक लड़ाई जीती, एक शेष : एक ओर ये कार्यक्रम है, दूसरी ओर समाज में महिलाओं की स्थिति फिर से असुरक्षित होती जा रही है, न केवल भारत में अपितु सभी जगहों पर। क्यों? इसलिए कि महिलाओं ने अभी तक जो लड़ाई जीती है, वह केवल वैधानिक स्तर पर अधिकार प्राप्ति भी है। इस उपलब्धि के फलस्वरूप आज शासन, राजनीति, विज्ञान, शिक्षा, समाज कल्याण संस्कृति, उद्योग-व्यापार, नौकरियाँ, ट्रेड यूनियन तक सभी जगह न केवल स्त्रियों की पहुँच है; वे महत्वपूर्ण और जिम्मेदारीपूर्ण पदों पर भी आसीन हैं और उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा योग्यता का परिचय दे युगों-पुरानी धारणाओं को भी बदल दिया है कि नारी पुरुष से हीन मानसिक स्तर की या दूसरे दर्जे की नागरिक मानी जाये। एक ओर महिलाएँ अधिकार पाकर अधिकार से जुड़े उत्तरदायित्व से भटक गईं दूसरी ओर परम्परागत श्रेष्ठता की भावना को आघात लगने से पुरुष का अहम महिलाओं की इस प्रगति को पचा नहीं पाया। इसलिए दूसरी लड़ाई अभी भी शेष है वह है सामाजिक भेदभाव और सामाजिक अन्याय को दूर करने की लड़ाई। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के नियमानुसार स्त्रियों का सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हैं और भेदभाव सर्वत्र समाप्त कर दिया गया है। अब यदि व्यवहार में यह भेदभाव उपस्थित है तो इसे दूर करना है। यह कार्य स्त्री-पुरुष सहयोग से ही सम्भव है, प्रतिद्वन्द्विता या सूची दोषारोपण से नहीं।

पिछले दशक में नारी-मुक्ति आन्दोलन की चर्चा विश्वभर की प्रबुद्ध महिलाओं की जुबान पर रही। शायद ही कोई पत्र-पत्रिका बची हो, जिसमें इस आन्दोलन के चित्र, समाचार व विवरण न छपे हों। पर पश्चिम और भारत की स्थितियों को मिलाकर नहीं, अलग-अलग करके देखना होगा। पश्चिम की नारी प्राचीन काल से शोषित रही है। वहाँ वह प्रेयसी व पत्नी पहले है माँ बाद में और माँ के रूप में भी पूर्णित नहीं रही। पत्नी एवं प्रेयसी रूप में भी वह भोग्या पहले है जिसे पुरुष को

आकर्षित करने के लिए अपने शरीर को, शरीर पर अत्याचार सहन करने पर भी, सजना-सँवारना है। इसीलिए पश्चिम में कृत्रिम विधियों से सौन्दर्य साधना और सौन्दर्य प्रसाधनों का तकनीकी ढंग से खूब विस्तार हुआ, इतना कि स्त्री का अपने ही शरीर पर अधिकर जैसे समाप्त हो गया। देह-साधना और देह-भोग के इस अतिरेक के फलस्वरूप आई सामाजिक विकृतियों के प्रति विद्रोह के रूप में और अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की मान्यता के लिए वहाँ नारी-मुक्ति आन्दोलन ने जन्म लिया।

नारी अधिकारों की माँग उठाने वाले प्रमुख नारी संगठन भी नारी सुरक्षा की माँग लेकर नारे लगाते हुए सड़कों पर उतर आये, जैसे कि नारी शोषण की ऐसी घटनाओं का उन्हें अभी पता चला है और इसके पहले कहीं कुछ न घटता रहा हो। इण्डियन वीमेंस काउन्सिल के नेतृत्व में कई समाज सेवी संगठनों और महिला संस्थाओं ने प्रदर्शन आयोजित किये। इन्हें प्रभावशाली बनाने के लिए नुक्कड़ नाटकों आदि तक का सहारा लिया गया। लेकिन इन प्रदर्शनों के साथ-साथ और इनके बाद भी वारदातें घटती रहीं।

इस प्रकार भारतीय नारी की स्थिति, उसके इतिहास और मुक्ति, संघर्ष के प्रमुख मुद्दे हैं :-

किसी भी समस्या के लिए, कठिनाई या कष्टों के लिए जिम्मेदार कोई एक कारण या कोई एक पक्ष नहीं होता। समाज की सारी स्थितियों, जो समय-सापेक्ष होती हैं, इसके लिए मुख्यतः जिम्मेदार होती हैं। भारतीय नारी के सामाजिक दर्जे के पीछे भी यही तथ्य है। इसलिए केवल पुरुष सत्ता को दोष देना व्यर्थ है। भारतीय पुरुष किसी भी देश के पुरुष से अधिक जिम्मेदार पति हैं। भारतीय माता-पिता लड़कियों पर कुछ बन्धन लगाते हैं तो उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी का निर्वहन भी करते हैं। आजादी के नाम पर पश्चिमी किशोरियों की तरह बाहरी असुरक्षित स्थितियों में रखने व उनसे जूझने के लिए उन्हें अकेला नहीं छोड़ देते।

पश्चिम से प्रारम्भ पुरुष वनाम नारी मुक्ति आन्दोलन के लिए यहाँ कोई आधारभूमि नहीं है। मानवीय भावभूमि और सोच के धरातल पर एक जाति समानता के बावजूद भारतीय नारी का अधिकार प्राप्ति का इतिहास सर्वथा भिन्न है।

यहाँ नारी प्राचीन काल से शोषित नहीं रही। यह वैदिक काल के इतिहास से स्पष्ट है। मध्यकालीन बन्धनों को भी शोषण न कहकर तत्कालीन स्थितियों की उपज कहना ही ठीक होगा। जब विदेशी आक्रमणों से हमारा पूरा जाति व सामाजिक सन्तुलन बिगड़ा, नारी भी तभी बन्धनों के घेरे में आयी। देश की गुलामी और नारी की गुलामी, उसके साथ जुड़ी जौहर/सती प्रथा, देश के पिछड़ेपन और नारी के पिछड़ेपन को अलग-अलग करके देखना भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को झुठलाना है। आधुनिक प्रमाण है : राष्ट्रीय आजादी और स्त्रियों की आजादी के संघर्ष में स्त्री-पुरुषों की समान भागीदारी। समानता के स्तर पर भागीदारी और देश की आजादी के साथ ही भारतीय स्त्रियों को मिले समान अधिकार। देश निर्माण का कार्य भी इसी तरह समान भागीदारी से ही सम्भव है।

भारतीय नारी की समस्याओं को किसी एक पहलू से भी नहीं देखा जा सकता। न ही सभी स्त्रियों की स्थिति समान है। यहाँ महानगरीय अति आधुनिकता से लेकर आँचलिक आदिवासी/अनुसूचित जाति महिलाओं तक स्थितियों के अनेक स्तर हैं कुछ आदिम समुदायों में आज भी मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था है। कुछ अत्यंत पिछड़ी मानी जाने वाली आदिम जातियों में 'परिवीक्षा विवाह' जैसी प्रथाएँ भी मौजूद हैं, जो भावी वैज्ञानिक युग के निकट लगते हैं और हमारे उज्जवल अतीत की निशानियाँ हैं। भारतीय समाज में तीन स्पष्ट वर्ग हैं- थोड़े स्थानीय भेद के साथ लगभग सभी निम्न वर्गों में पारिवारिक विघटन और तलाक की समस्याएँ नहीं हैं। वहाँ एक पति छोड़ दूसरा कर लेने से कोई सामाजिक अपवाद नहीं बनता। किसी ताड़ना या यातना के बिना, कहीं थोड़ा आर्थिक दण्ड देकर कहीं बिना दण्ड ही असफल विवाह से मुक्ति

आसानी से पाई जा सकती है। ऊपर का वर्ग साधन-सम्पन्न सफेदपोशों का है, जहाँ सब कुछ हो सकता है, सुविधा से मूल्य बनाये और बदले जाते हैं और बदनामी का खतरा मोल लिए बिना पैसों व सम्पर्कों के बल पर सम्मान व सुविधाएँ जुटाई जा सकती हैं। स्त्री का खरीदार व शोषक हर युग में प्रायः यही वर्ग रहा है। समस्या केवल मध्य और निम्न मध्य वर्ग की है जहाँ निम्न वर्गों जैसी दो टूकता, बेवाकी और खुलापन है, न ऊपरी वर्गों जैसी सुविधा सम्पन्नता। इसलिए अधिकत्तर समस्याएँ इसी वर्ग के साथ जुड़ी हैं।

निम्न वर्गों की स्त्रियाँ आत्म निर्भर होने और कहीं-कहीं पति से अधिक कमाने के बावजूद उनसे पिटती हैं इसलिए स्त्री की समस्या को केवल आर्थिक प्रश्न के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। वहाँ गरीबी के समय अशिक्षा, पिछड़ा मानसिक स्तर और ढीले नैतिक मूल्यों का दुरुपयोग भी इसके पीछे है। अनुसूचित जाति की महिलाओं का हर काल में शोषण भी इन तीनों मिली-जुली स्थितियों का परिणाम है, केवल गरीबी के कारण नहीं। अन्यथा मध्यकाल की देन 'नारी पुरुष की सम्पत्ति' वाली धारणा समाज के सभी वर्गों मे मौजूद है। हर वर्ग में स्त्री सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं नारी से अधिक पुरुष पर है। अपनी संस्कृति से कटकर और पश्चिमी संस्कृति में रंग कर सुविधा-सम्पन्न उच्च्व वर्ग भी भीतर से अस्थिर और दुविधा ग्रस्त है।

मध्यकालीन स्थितियों के अवशेष रूप में बची रुढ़ियों, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास शिक्षा के साथ जुड़े विभाजित मन, पुरानी पड़कर अर्थ खो चुकी परम्पराओं से मोह, भीतरी असुरक्षा के कारण पहले से भी अधिक पुरुष की जिद लागू होना, नये मूल्यों या आधुनिकता के नाम पर वासना की अधिक गुलामी के कारण शिक्षित-प्रशिक्षित आजाद होकर भी पुरुषों की पहले से अधिक गुलामी जैसी अनेक स्थितियाँ और एक नारी के द्वारा दूसरी नारी के प्रति क्रूर व ईर्ष्यालु हो उसके मार्ग में रोड़े अटकाने वाली अपनी ही कमजोरियाँ नारी की वर्तमान स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

महिलायें मानव जाति से अलग नहीं हैं, समाज से अलग नहीं है। मनुष्य जाति के, समाज के विकास के साथ ही उनकी स्थितियों में सुधार होता है। इसे देशकाल के सन्दर्भ में और स्थानीय परम्पराओं के साथ जोड़कर ही देखना-समझना चाहिए। किसी देश की संस्कृति के आधार से भी इस विकास को अलग नहीं किया जा सकता। भारतीय नारी को समझना चाहिए कि हमारा समाज उस स्त्री के प्रति वेहद क्रूर है जो पुरुष विरुद्ध मोर्चा बनाती है और उत्तरदायित्व हीन आजादी चाहती है। यहाँ पश्चिम की तरह, जहाँ हर चीज के साथ प्यार का भी जैसे व्यापारीकरण हो गया है, प्यार को भावनाओं से अलग कर सौदेबाजी का रूप नहीं दिया जा सकता। 'थ्रिल' या सनसनी की तलाश में यहाँ केवल निराशा और टूटन ही हाथ लगेगी। नारी मुक्ति एक स्थिति है, कोई नारा नहीं और स्थिति को धीरे-धीरे प्रयत्न से, तर्कसिद्ध रवैये और आचरण तथा आदर्श से, आत्म विश्लेषण और सुधार-परिष्कार से, त्याग और साधना से ही लाया जा सकता है।

(१) <u>परम्परागत रीति-रिवाजों को मानने की समस्या-</u>

भारतीय सामाजिक जीवन के संचालन में परम्पराओं तथा प्रथाओं का विशेष महत्व रहा है। परम्परागत तथा परम्पराएँ हमारे आचरण एवं व्यवहार करने की सबसे शक्तिशाली मानदण्ड होती हैं। वैदिक युग से लेकर अभी तक इन्हीं परम्पराओं, प्रथाओं, रीति-रिवाजों को स्वीकार करते चले आने के कारण ही भारतीय समाज की पहचान परम्परागत समाज के रूप में मानी गयी है। परम्पराओं का अनुपालन करने से व्यक्ति को अनेक स्थितियों में अनावश्यक तर्क वितर्क एवं प्रयासों से आसानी से छुटकारा मिल जाता है। परम्पराएँ, स्थान एवं समय के सापेक्ष पुष्ट कार्य व्यवहार होती है जिनका प्रकार्यात्मक उपयोग रहा है। व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निर्णय लेने में परम्परायें तथा पुराने रीति-रिवाज सुविधा प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में समस्त हिन्दू जातियाँ अनुसूचित जातियाँ यहाँ तक जनजातियाँ समेत दलित जातियाँ भी

परम्पराओं तथा प्रथाओं पर आश्रित रही हैं। अब जबकि भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, संचार के साधनों का विकास तथा वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ रहा है। इनका हमारी प्रथाओं तथा परम्पराओं पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जाति महिलाएँ कहाँ तक प्रभावित हो रही हैं? यह पता करना सर्वथा न्यायोचित लगा।

प्रतिदर्श में शामिल अनुसूचित जाति महिलाओं से इस संदर्भ में यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या वे पुराने रीति-रिवाजों, प्रथाओं तथा परम्पराओं को स्वीकार करती हैं? या अपने दैनिक जीवन में मानती हैं? के सन्दर्भ में उनकी प्रतिक्रियाओं को संकलित कर तालिका संख्या 5.1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.१

रीति-रिवाजों को मानने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

रीति-रिवाजों के प्रति विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
रीति-रिवाजों को मानती हैं	234	78.00
रीति-रिवाजों को नहीं मानती हैं	36	12.00
तटस्थ	30	10.00
कुल योग	300	100.00

उपयुक्त तालिका के अवलोकन से पता चलता है कि अधिकांश 78 प्रतिशत उत्तरदाता परम्परागत रीति-रिवाजों को पारिवारिक जीवन संचालन के लिए आवश्यक समझकर उन्हें स्वीकार करती हैं जबकि केवल 12 प्रतिशत अपने को प्रगतिशील मानने वाली उत्तरदाता इन्हें अनावश्यक एवं अनुपयोगी समझकर नकारात्मक अभिव्यक्ति का प्रदर्शन किया है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तटस्थ राय ही व्यक्त किया है। वे न तो उसे स्वीकार ही करती हैं और न ही अस्वीकार करती हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रीति-रिवाजों का प्रचलन एवं मान्यता अनुसूचित जाति महिलाओं में आज भी ज्यादा मात्रा में पाया जाता है।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य को एक अति महत्वपूर्ण कारक के रूप में माना जाता है। स्वास्थ्य के माध्यम से ही व्यक्ति के सुखी एवं संतुष्ट जीवनयापन का अनुमान लगाया जाता है। **एडवार्ड जे. सीजलिज (1951)**[2] ने स्पष्ट किया है कि स्वास्थ्य को व्यक्ति की एक ऐसी दशा के रूप में स्वीकार करना चाहिए जो उसे आरोग्य बनाये रखती है। प्रायः उस अवस्था में जब सावयव के बिभिन्न अंगों की स्वाभाविक कार्यक्षमता प्रभावित होने लगे। एक कमजोर (रोगी) व्यक्ति के पास कितना ही धन क्यों न हो वह किसी भी क्षण सुखी, शांतिमय एवं समरूप जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। युवावस्था में भी व्याधियाँ आक्रमण कर सकती हैं किन्तु जीवन की सक्रियता एवं जवानी के जोश में इनका विशेष असर मालूम नहीं पड़ता है क्योंकि युवावस्था में सहन करने की क्षमता अधिक होती है तथा शरीर में पर्याप्त रक्त प्रवाह एवं सावयव की दृढ़ सहनशक्ति के कारण आन्तरिक उपचार से ही इन पर नियंत्रण स्थापित करना सम्भव हो जाता है, धीरे-धीरे शारीरिक क्षीणता, मानसिक कष्टों की वृद्धि तथा आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न तनाव आदि एक सामान्य एवं स्वस्थ व्यक्ति की भी वृद्धावस्था की स्थिति में ढकेल देता है। ऐसी स्थिति में प्रायः वृद्ध लोग अपने स्वास्थ्य की गिरावट का संकेत करने लगते हैं।

अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं से उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी दशाओं को जानने के लिए प्रश्न किया गया कि क्या आप यह अनुभव कर रहीं हैं कि आप बीमारियों से ग्रसित होने लगी हैं जिससे आपको स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है? इस सन्दर्भ में महिलओं ने तो विचार दिया उन्हें तालिका संख्या 5.2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अधिकांश महिलाओं ने 54 प्रतिशत महिलाएँ यह अनुभव करती हैं कि अब उनका स्वास्थ्य प्रभावित होनें लगा है क्योंकि बीमारियाँ धीरे-धीरे आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। जबकि 46 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी भी हैं जो यह मानती हैं कि अभी तक उन्हें ऐसा कुछ भी अनुभव नहीं हुआ है वे अपना जीवन सामान्य रूप से व्यतीत कर रही है।

तालिका संख्या-५.२

स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का अनुभव करती हैं।	162	54.00
स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का अनुभव नहीं करती हैं।	138	46.00
कुल योग	300	100.00

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आधे से ज्यादा महिलाएँ स्वास्थ्य के प्रति चिंतित हैं।

व्याधि की प्रकृति एवं उपचार की व्यवस्था का घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। सामान्य रोगों का निदान प्रायः स्थानीय स्तर के चिकित्सकों, हकीमों एवं वैद्यों द्वारा सरलता से हो जाती है किन्तु असाध्य रोगों का उपचार रोग विशेष से सम्बन्धित किसी विशिष्ट चिकित्सालय में किसी अनुभवी या योग्य चिकित्सक की देखरेख में ही सम्भव हो जाता है। आर्थिक रूप से विपन्न लोग क्षेत्रीय स्तर के सरकारी अस्पताल में या किसी कम खर्चीले चिकित्सक से ही अपना इलाज कराने के लिए मजबूर होते हैं। अधिकांशतः इस वर्ग के व्यक्ति घरेलू स्तर पर मान्य घरेलू औषधियों द्वारा ही इलाज करते रहते हैं। इस सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की स्थिति जानने के लिए उनका विचार आमंत्रित किया गया। प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 5.3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.३
व्याधि-उपचार व्यवस्था का विवरण

उपचार की प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशत
स्थानीय चिकित्सक द्वारा	45	27.70
स्थानीय सरकारी चिकित्सालय द्वारा	82	50.10
घर पर ही चिकित्सक बुलाकर	12	08.10
दूरस्थ किसी अच्छे चिकित्सालय में जाकर	14	08.60
घरेलू उपचार एवं अन्य तरीकों द्वारा	09	05.50
कुल योग	162	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि सर्वाधिक 50.1 प्रतिशत महिलाएँ अपने रोगों का उपचार स्थानीय स्तर के सरकारी अस्पतालों में जाकर करवाती हैं 27.7 प्रतिशत महिलाएँ अपने आस-पास स्थिति स्थानीय चिकित्सकों की सेवाओं से ही इलाज करती हैं। 8.6 प्रतिशत महिलाएँ दूरस्थ किसी अच्छे चिकित्सक की सेवाएँ लेती हैं जबकि 8.1 प्रतिशत घर पर ही चिकित्सक को बुलाकर चिकित्सा करवाती हैं। मात्र 5.5 प्रतिशत महिलाएँ घरेलू उपचार आदि से ही अपना काम चलाती हैं।

इस प्रकार अधिकांश महिलाएँ अपने इलाज के लिए स्थानीय एवं सरकारी चिकित्सकों पर निर्भर हैं।

पृथकत्व एवं एकान्तता जो व्यक्ति एवं समाज के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य अस्तित्वमान सम्पर्कों, भावात्मक व वैचारिक विनिमय तथा अन्तःक्रियाओं की प्रकृति एवं तीव्रता को सृजित करने में सहायक होते हैं। **टानसेण्ट पीटर (1957)**[3] ने सामाजिक रूपक के आधार पर पृथकत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि दो व्यक्तियों का चाहे वे पड़ोसी ही क्यों न हो, कभी-कभी या पूर्व निर्धारित आधार पर सम्पर्क में आना, आवासीय सीमा के अन्दर या बाहर मिलना तथा आपस में एक-दूसरे के विचारों का आदान प्रदान करने या न करने की स्थिति को उजागर करता है। जबकि **इथक शेनास (1968)**[4] का मानना है कि सामाजिक पृथक्करण का अभिप्राय है व्यक्ति एवं उसके अनुयायियों के मध्य सार्वभौमिक एवं आवश्यक सम्प्रेषण का अभाव। **टन्सटाल जे. (1966)**[5] ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक पृथकत्व एक ऐसी सामाजिक दशा है जो सभी व्यक्तियों को प्रभावित करती है। आपके अनुसार अकेला हो जाना, अकेला रहना, अकेला अनुभव करना या लोगों द्वारा अलगाना ही पृथकत्व के अन्तर्गत आते हैं।

पृथकत्व के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न स्वरूपों में पाये जाने वाले तुलनात्मक संचार या वैचारिक सम्प्रेषण के अभाव को ही माना जाता है। प्रायः सामाजिक सम्पर्कों, अन्तःक्रियाएँ एवं संचार प्रक्रिया ही सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण के आधार माने जाते हैं। इनके अभाव में व्यक्ति का दूसरों से सम्पर्क विच्छेद हो जाना स्वाभाविक परिणाम माना जायेगा। इसलिए पृथकत्व की स्थिति व मात्रा का संज्ञान करने के लिए आवश्यक हो जाता है कि उत्तरदाताओं में पृथकत्व के प्रति क्या दृष्टिकोण है, को ज्ञात किया जाये।

तालिका संख्या 5.4 में उत्तरदाताओं में पृथक्करण की अनुभूति के बारे में तथ्यों को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.४

उत्तरदाताओं में पृथक्करण अनुभव के प्रति दृष्टिकोण

पृथक्करण का अनुभव	आवृत्ति	प्रतिशत
पृथक्करण का अनुभव करती हैं।	234	78.00
पृथक्करण का अनुभव नहीं करती हैं।	66	22.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश 78 प्रतिशत महिलाएँ अपने को समाज या परिवार से पृथक अनुभव नहीं करती हैं जबकि 22 प्रतिशत उत्तरदाता पृथक्कण की भावना की अनुभूति करती हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि ऐसी उत्तरदाताएँ जिनके पति या परिवारीजन रोजी-रोजगार के सम्बन्ध में दूरस्थ चले गये हैं या जिनके पति या परिवारीजन स्थायी रूप से परिवार से मृत्यु आदि के कारण सहभागिता नहीं रखते हैं, इन महिलाओं में समाज से भी उचित सहानुभूति पूर्ण व्यवहार नहीं किया जा रहा है जिसके कारण उनमें पृथक्करण के भाव की अनुभूति होती है।

महिलाओं के हितार्थ आयोजित होने वाले सामाजिक कार्यक्रमों, उत्सवों, पर्वों, तीज-त्योहारों, गोष्ठियों आदि में महिलाओं की यथाशक्ति सहभागिता भी उपयोगी मानी जाती है इससे जहाँ युवा पीढ़ी को अतीत के अनुभवों का लाभ मिलता है वहीं कुछ अच्छा करने की प्रेरणा भी मिलती हैं क्योंकि प्रत्येक युवा महिला को एक न एक दिन वृद्धावस्था से गुजरना ही पड़ता है। अतः उसे पहले से ही तैयारी करनी पड़ती है। जो महिलायें अधिक स्वस्थ एवं सक्रिय रहती हैं वे विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यक्रमों

से विचलित रूप से सहभागी होती रहती हैं तथा जो घर-गृहस्थी के मोहपाश में उलझी रहती हैं वे इस प्रकार के कार्यक्रमों में सहभागी होने के प्रति उदासीन रहती हैं।

इस स्थिति की जानकारी लेने के लिए उत्तरदाताओं से उनके विचार आमन्त्रित किये गये। प्राप्त समस्त विचारों को एकत्रित कर विश्लेषण के उद्देश्य से तालिका संख्या 5.5 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-५.५
सामाजिक अन्तः क्रिया के प्रति उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
सहभागिता रहती है	246	82.00
सहभागिता नहीं रहती है	54	18.00
कुल योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 82 प्रतिशत महिलाएँ किसी न किसी रूप में महिलाओं के लिए आयोजित किये जाने वाले सामाजिक आयोजनों में सहभागी होती हैं जबकि शेष 18 प्रतिशत महिलाएँ इस प्रकार के किसी भी कार्यक्रम में सहभागी नहीं होती हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिलाएँ सामाजिक स्तर पर आयोजित होने वाले विभिन्न प्रकार के महिला कार्यक्रमों में यथाशक्ति सहभागी होती रहती है जो उनके सक्रिय जीवन का परिचायक है।

(२) **महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक समास्याएँ-**

धन को एक ऐसी धुरी माना जाता है जिसके चारों ओर व्यक्ति की समृद्धि एवं प्रसन्नता चक्कर लगाती रहती है। सर्वेगुणा कांचनमाश्रयन्ति। जहाँ तक महिलाओं का सन्दर्भ है प्रायः यह देखा गया है कि इनकी अनन्त आवश्यकताओं को पूरा करने के

लिए परिवार की ओर से कोई ठोस व्यवस्था नहीं की जाती है। कहा भी गया है कि नारी को बाल्यावस्था में अपने पिता के अधीन; युवावस्था में पति के अधीन एवं वृद्धावस्था में सन्तानों के अधीन (नियन्त्रण) में रहना चाहिए। अनुसूचित जाति की महिला होना वैसे भी अनेकानेक समस्याओं का पुँज होता है फिर धनाभाव के कारण महिलाओं का जीवन अधिक जटिल व समस्याग्रस्त हो जाता है। अनुसूचित जाति की महिला होने की अवस्था में आर्थिक असुरक्षा की स्थिति अनेक व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं इनमें सामाजिक प्रस्थिति का ह्रास अर्थपूर्ण सामाजिक अन्तःक्रियाओं की कमी, सामाजिक एवं नातेदारी-सम्बन्धों का प्रभावित होना तथा अन्तिम समय में अपनी इच्छाओं का दमन करना आदि प्रमुख है।

आर्थिक समस्याओं के प्रति महिलाओं के विचारों का विवरण-

प्रतिचयित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या उनके जीवन में आर्थिक समस्यायें हैं अर्थात् क्या वे आर्थिक समस्याओं का सामना कर रही हैं? इस सन्दर्भ में महिलाओं ने जो विचार व्यक्त किये उन्हें एकत्र कर तालिका संख्या 5.6 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-५.६

आर्थिक समस्याओं के प्रति अनुसूचित जाति की महिलाओं के विचार

महिलाओं के विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
आर्थिक समस्याओं को अनुभव करती हैं	192	64.00
आर्थिक समस्याओं को अनुभव नहीं करती हैं	108	36.00
कुल योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 64 प्रतिशत महिलायें आर्थिक समस्याओं का सामना कर रही हैं, जबकि शेष 36 प्रतिशत महिलायें आर्थिक समस्याओं का अनुभव नहीं कर रही हैं यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ सुलझे विचारों वाली महिलाओं ने स्पष्ट किया कि माया (धन) का ऐसा जाल है कि व्यक्ति पर कितना ही धन क्यों न हो फिर भी उसे धन की कमी बनी ही रहती है। एक सुखी एवं शान्तिमय जीवन के लिये सबसे बड़ा धन सन्तोष होता है। अपनी परिस्थिति से किसी न किसी रूप में समझौता करना ही पड़ेगा। जितना अपना चद्दर हो उतने ही पैर पसारने में भलाई है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश महिलायें आर्थिक समस्याओं का अनुभव कर रही हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक समस्याओं का विवरण-

प्रतिचयित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि वे भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में आर्थिक समस्याओं का अनुभव कर रही है। इस विषय में महिलाओं ने जो तथ्य प्रस्तुत किये उन्हें संकलित कर तालिका संख्या 5.7 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.७

अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक समस्याओं का विचार

क्र. सं.	महिलाओं की आर्थिक समस्यायें	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की समस्या	119	62.00
2.	अपने रोग का उपचार कराने की समस्या	73	38.00
3.	धार्मिक क्रिया-कलापों को सम्पन्न करने की समस्या	50	26.00
4.	परिवार में अपना अस्तित्व स्थापित करने की समस्या	58	30.00

नोटः खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं होगा।

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि सर्वाधिक 62 प्रतिशत महिलायें यह मानती है धनाभाव के कारण उनके समक्ष पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह की समस्यायें उत्पन्न होती रहती हैं; जबकि 38 प्रतिशत महिलाओं ने स्पष्ट किया कि विपन्नता के कारण वे सही तरीके से अपने रोगों का उपचार नहीं करा पा रही है। इसके साथ-साथ 31 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि यदि पास में पूँजी नहीं होती हो तो परिवार में कोई पूछ नहीं होती है। मात्र 26 प्रतिशत ऐसी महिलायें हैं जो यह व्यक्त करती है कि धनाभाव के कारण वे धार्मिक कार्य भी नहीं कर पाती है। जबकि 30 प्रतिशत महिलायें धनाभाव के कारण परिवार में अस्तित्वहीन हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि धनाभाव के कारण प्रतिचयित महिलायें विभिन्न पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह न कर पाने, अपने रोग का सही इलाज न करवा पाने; धार्मिक क्रिया-कलापों को सम्पन्न न कर पाने तथा परिवार में अपना अस्तित्व स्थापित न कर पाने से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं का सामना करती रहती हैं।

<u>वित्तीय संकट से मुक्ति पाने हेतु अनुसूचित जाति की महिलाओं के विचार-</u>

जो महिलायें वित्तीय विपन्नता के कारण अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करती रहती हैं उनसे यह जानने का प्रयास किया गया कि इन समस्याओं का निदान करने के लिए वे किन उपायों को अधिक उपयोगी मानती हैं। इस सन्दर्भ में वृद्धाओं ने जो विचार व्यक्त किये उन्हें एकत्र कर तालिका संख्या 5.8 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-५.८

विततीय संकट से मुक्ति हेतु अनुसूचित जाति की महिलाओं के विचारों का विवरण

क्र. सं.	महिलाओं के विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	बच्चों से आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए	184	61.33
2.	पैतृक सम्पत्ति में वैधानिक हिस्सा होना चाहिए	81	27.00
3.	लोगों द्वारा लिया गया उधार मिल जाये तो अच्छा हो	23	07.66
4.	संसार से विदा होना ही श्रेष्ठ है	58	19.33
5.	सरकार की ओर से गुजारा भत्ता मिलना चाहिए	154	51.33

नोट: खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं होगा।

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 61.33 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याओं से निपटने के लिए परिवार के बच्चों से ही वित्तीय सहायता मिलनी चाहिए क्योंकि यही हमारी परम्परा रही है। बच्चों के होते हुए हमें दूसरों के आगे हाथ फैलाने की क्या जरूरत है। अगर बच्चे अपने इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करते तो दूसरे लोग हमारी मदद क्यों करें? जबकि 51.33 प्रतिशत महिलायें यह स्पष्ट करती हैं कि जब सरकार राज्य के समस्त कार्यों के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध कराती हैं तो वह हम लोगों के गुजारे के लिए कुछ गुजारा भत्ता

क्यों नहीं देती है। शायद इन महिलाओं को ज्ञात नहीं है कि उत्तर प्रदेश समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित विधवा पेंशन योजना चलायी जा रही है। इसके साथ-साथ 27 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि यदि पैतृक सम्पत्ति में उनका वैधानिक हिस्सा हो तो उन्हें वित्तीय संकट का अधिक सामना न करना पड़े। शहरी क्षेत्र में पैतृक सम्पत्ति से किराये के रूप में एवं ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध कृषि भूमि से नियमित आय होती रहती है। जिससे गुजारा होता रहता है। इसके विपरीत 19.33 प्रतिशत महिलाओं ने बड़े दुःख के साथ व्यक्त किया कि हमारी सभी समस्यायें संसार से विदा होते ही समाप्त हो जायेंगी। अतः हमारा संसार से विदा होना ही श्रेष्ठ है। शेष मात्र 7.66 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि उन्होंने अपनी रकम का कुछ भाग लोगों को उधार दे दिया था अब लोग वापस नहीं कर रहे हैं अगर यह धन ही वापस मिल जाये तो आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिल सकती है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महिलाओं की वित्तीय समस्याओं का समाधान उनके बच्चों द्वारा एवं सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता द्वारा ही सफलतापूर्वक सम्भव हो सकता है।

अध्ययन हेतु प्रतिचयित अनुसूचित जातीय महिलाओं से तथ्य एकत्र करते हुए यह अनुभव किया कि महिलाओं की अनेक समस्याओं में सम्प्रेषण-अभाव की समस्या भी प्रमुख है। कहीं आने जाने की स्वतन्त्रता न होने के कारण तथा अधिकत्तर अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनपढ़ होने के कारण अखबार आदि न पढने की वजह से महिलाओं को अपेक्षित सूचना नहीं प्राप्त हो पाती है और न ही महिलाओं के विचारों, भावनाओं आदि का दूसरों तक सम्प्रेषण हो पाता है। महिला की इच्छा होती है कि गृहस्थी उसी के द्वारा बनायी गयी है अतः उसे प्रत्येक पारिवारिक गतिविधि को

अद्यतन जानकारी होनी चाहिए और उसके आनुभविक विचारों को सभी सदस्यों तक सम्प्रेषित किया जाना चाहिए अर्थात् उसका स्थान केन्द्र में होना चाहिए।

अधिक समय तक बाहर न निकलने के कारण उनमें खालीपन रहने लगता है। अधिकांश महिलायें छोटी-छोटी बातों पर रोने, हँसने एवं कसम खाने की सिद्धहस्त (अभ्यस्त) पायी गयी। उनका यही व्यवहार उनकी लोकप्रियता अथवा संघर्षात्मक सन्दर्भों हेतु उत्तरदायी माना जाता है। खाली दिमाग शैतान का घर की कहावत को चरितार्थ करती हुए कतिपय महिलायें सीमा से अधिक बोलने में माहिर होती हैं चूँकि उनके पास समय का अभाव नहीं होता है। अतः जो भी व्यक्ति (स्त्री, पुरुष, बच्चे) उनकी पकड़ में आया, घण्टों की फुर्सत हो जाती है। वह महिला से येनकेन प्रकारेण अपना पीछा छुड़ाकर नौ दो ग्यारह होना चाहता है। पुनः महिला के पास आकर उसके सुख-दुःख को सुनने से कतराता रहता है। इसी तरीके की अनेक स्थितियाँ देखी गयीं जो महिलाओं की सम्प्रेषण-अभाव जनित समस्याओं को स्पष्ट करती हैं।

प्रायः महिलायें, महिला होने को जीवन की समस्या, दुःख, बोझ, परेशानी समझकर जीतीं हैं, शिकायतें करती हैं और खींजती-कुढ़ती हैं। पर सच यह है कि यदि सहज रूप से इसे स्वीकार करने की मानसिकता बना ली जाये तो इसका भी सकारात्मक सार्थन उपयोग किया जा सकता है। घर गृहस्थी के तनावों, जिम्मेदारियों से मुक्त हो, निश्चित जीवन जिया जा सकता है।

वस्तुतः हर उम्र के पड़ाव पर यदि नई-नई जिम्मेदारियाँ हैं, दायित्व हैं, तो उन्हें निभाने के लिए क्षमताओं का विकास भी है। हर उम्र पर व्यक्ति की सोच, भूमिका बदल जाती है, जो बदलनी जरूरी भी है। वरना दायित्व पूरे कैसे होंगे। नये रोल को निभाते समय कुछ पुराना छोड़ना पड़ता है, स्वभाव व व्यवहार नई परिस्थितियों के हिसाब से बदलना पड़ता है तथा नयी क्षमतायें, मानसिकतायें विकसित भी करनी पड़ती हैं। यही जीवन का क्रम है। बुढ़ापा समस्या और बोझ तब बन जाता है जब

हम पुराने से चिपके रहना चाहते हैं, अपने दायित्वों को नये कन्धों पर छोड़ने का भरोसा विकसित नहीं कर पाते। जिजीविषा के चलते, सब कुछ अपने में बटोरे रखने की लालसा के कारण महिलायें अपने बच्चों पर, जो अब तक युवा हो चुके हैं, दायित्व छोड़ पाने का भरोसा नहीं कर पातीं खुद ही सभी जिम्मेदारियाँ उठाना चाहती हैं। न भी उठा पायीं तो भी चाहती हैं कि घर-बाहर के दायित्व उसी तरह निभाये जायें जैसा कि वह अब तक करती आयीं हैं। युवा सदस्यों के काम करने के तरीके में हस्तक्षेप करना, मीन-मेख निकालना, कहना न मानने पर क्रोध करना, खींजना, शिकायतें करना आदि व्यवहार करके महिलायें अपने को खुद ही संकट में डाल, परेशानी मोल लेती हैं।

समझदारी की अपेक्षा इस मसले पर बड़ों से ज्यादा होती है- बच्चों से नहीं। बड़ों को ही समझदारी दिखानी चाहिए। आखिर घर परिवार उनका है। उनसे उनके बच्चे शिकायतें पालें व वे स्वयं अपनी सन्तति से दुःख रहें, कुढ़े एकाकी महसूस करें, ये ठीक नहीं है।

घर परिवार की उलझनों में ज्यादा दिमाग खपाना व दिल पर बोझ डालना ठीक नहीं है। महिला होने के कारण वे जिम्मेदारियाँ जो निभानी थीं, निभा दी गयीं, घर परिवार व्यवस्थित कर दिया गया। अब घर-परिवार के दायित्वों को सँभालने का जिम्मा अपने बेटे बहुओं पर डालकर खुद को पठन-पाठन, अपनी उम्र के लोगों की संगत में रहना, अपनी रुचि के कामों को करना व खास करके अपनी सेहत का ध्यान रखने में व्यस्त करना ज्यादा सही है। यदि व्यर्थ की मीन-मेख, टोका-टाकी महिलायें न करें, अपने अनुभव, ज्ञान, मान, सम्मान को अक्षुण्य रख सकते हैं। तब अपनी जरूरत का, महत्व का एहसास भी बच्चों को करा सकते हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं को भौतिक पदार्थों से आसक्ति का त्याग मानसिक रूप से करना जरूरी है। अब यदि अपने वे शौक पूरे करने का प्रयत्न किया

जाये, जिनके लिये वक्त नहीं मिला है, तो जहाँ मन व्यस्त रहेगा, वहीं सार्थकता का एहसास भी होगा।

अपनी भावनात्मक तथा रागात्मक दुनिया की सीमाओं को व्यापक करके बड़े मजे से जीवन जिया जा सकता है। सुख से जीवन बीते इसके लिए यदि ये भी व्यवस्था कर ली जाये। कि बच्चों पर आर्थिक निर्भरता न रहे, तो बेहतर है, आज का जमाना भौतिकता का है, व्यक्ति भौतिकवादी हो गया है। दिल नहीं, दिमाग से सोचता व काम करता है। कुछ राशि अपने लिये रख लेना समझदारी है, ताकि अपनी किसी भी जरूरत के लिए बच्चों के सामने हाथ न पसारना पड़े।

अपनी भावनाओं को व्यापकता देना जरूरी है। अब भी घर गृहस्थी को कब्जे में किये रखने के मोह में फंसे रहकर क्लेश-दुःख झेलने से कहीं बेहतर है, किसी उद्देश्य के लिए, रूचि के लिए खुद को समर्पित कर दिया जाये। रचनात्मक दृष्टिकोण के सहारे यदि जीवन जीने का क्रम शुरू से ही रखा जाये, तो जीवन बोझ नहीं बन सकता। नई-नई रचनात्मकता में खुद को खूब रमाये रखा जा सकता है। कतिपय महिलाओं के उपरोक्त विचार असहभागिता की समस्या को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

(३) महिलाओं की प्रभुत्व-अस्तित्व एवं अधिसत्ता की समस्याएँ-

अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं का यह पक्ष पूर्णतः समाज-मनोवैज्ञानिक है। आधुनिक जटिल परिवेश में पारिवारिक एवं सामुदायिक स्तर पर अपनी विशिष्ट अधिसत्ता एवं प्रभुत्व को अक्षुण्य बनाये रखना सामान्यतः कठिन कार्य है। यही कारण है कि महिलाओं को अपनी परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभुत्व को यथावत बनाये रखना अत्यन्त कठिन कार्य प्रतीत होता है। यह देखा गया है कि पुरुष की अपेक्षा महिला को इस सन्दर्भ में अधिक परेशानी होती है। इसका कारण यह है कि पुरुष की अधिसत्त का सम्बन्ध प्रायः अपने बच्चों से ही होता है तथा पुरुष

के पास पैतृक सम्पत्ति आदि के अधिकार सुरक्षित होते हैं जिसकी विवशता से बच्चों को पुरुष की अधिसत्ता एवं उसका प्रभुत्व यथाशक्ति स्वीकार करना ही पड़ता है। इसके विपरीत प्रायः महिला की अधिसत्ता एवं प्रभुत्व का सम्बन्ध परिवार के बच्चों एवं बहुओं से होता है। बहुएँ दूसरा रक्त होती हैं तथा उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ भी अलग-अलग परिवेश की होती हैं। वे जिस माहौल से आती हैं वह माहौल सास के घर में नहीं मिलता है अतः वे महिला के साथ सरलता से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाती हैं। परिणामतः महिला व उसकी पुत्री एक पक्ष एवं बहुएँ अधिसत्ता एवं प्रभुत्व अस्तित्व संघर्ष का प्रतिपक्ष बन जाया करती हैं।

यहीं से प्रारम्भ होती है त्रियाचरित की कहानियाँ जिनके परिणामस्वरूप नव विवाहिताओं को आत्महत्या तक करनी पड़ती है या परिवारीजनों की साठगाँठ से नव वधू की हत्या की जाती है धीरे-धीरे सास द्वारा किये जाने वाले क्रूर या छिद्रान्वेषी व्यवहारों से तंग आकर बहुएँ उन्हें घृणा या तिरस्कृत नजरिये से देखने लगती हैं तथा यह मानती रहती हैं कि उन्हें उनकी सास ही सुखपूर्वक नहीं रहने देना चाहती हैं। इसी तरह पारिवारिक प्रतिष्ठा व परम्पराओं के प्रतिकूल किये जाने वाले कार्यों से खिन्न होकर महिलायें भी अपना नजरिया बदलने लगती हैं। युवा बच्चों की उभयगति और अधिक कष्टकर होने लगती है। तुलसीदास जी ने लिखा है कि "मोहै न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह चरित अनूपा।।" अतः नारी ही नारी की दुश्मन बन जाया करती है।

इस सन्दर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय समाज में पारिवारिक स्तर पर महिलाओं की सत्ता प्रस्थिति एवं प्रतिष्ठा निरन्तर अधोगति की ओर अग्रसर होती जा रही है। यही उनकी मनोवैज्ञानिक स्थितियों का सर्वाधिक संघात्मक पक्ष है। यह अत्यधिक दयनीय है तथा महिलाओं की समस्याओं को गम्भीरता से समझने एवं निदान के उपाय प्रस्तुत करने की माँग करता

है। कारण यह है कि अनुसूचित जाति की महिलायें अनुत्पादक एवं अनाश्रित अवस्था में होती हैं जिसके साथ वैचारिक संघर्ष के स्थान पर अधिक से अधिक सहानुभूति प्रदर्शित करने की आवश्यकता है।

इस सन्दर्भ में प्रतिचयित समस्त महिलाओं से यह प्रश्न पूछा गया कि अपनी अधिसत्ता एवं प्रभुत्व के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कैसा व्यवहार करना चाहिए? इस विषय में उन्होंने जो उत्तर दिये उन्हें समानता के आधार पर पाँच वर्गों में विभक्त कर तालिका संख्या 5.9 में प्रयुक्त किया गया है।

तालिका संख्या-५.९

अधिसत्ता एवं प्रभुत्व बनाये रखने हेतु महिलाओं के प्रयासों का विवरण

महिलाओं के प्रयास	आवृत्ति	प्रतिशत
परिवारीजनों की राय से राय मिलाकर निर्णय लेना	120	40.00
सामाजिक सहभागिता को कम करना	30	10.00
विवाहित बच्चों को परिवार की बागडोर सौंपना	72	24.00
परिस्थिति के अनुसार ढल जाना	48	16.00
परिवार से अलग रहना	24	08.00
परिवारीजनों पर कठोर नियन्त्रण रखना	06	02.00
कुल योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से विदित होता है कि 40 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि परिवारीजनों की राय से राय मिलाकर चलने से परिवार में

अधिसत्ता एवं प्रभुत्व बना रहता है क्योंकि प्रत्येक सदस्य की अहं तुष्टि होती रहती है जबकि 24 प्रतिशत महिलायें यह मानती है कि विवाहित बच्चों को पारिवारिक दायित्वों की बागडोर सौंप देने से अधिसत्ता एवं प्रभुत्व-अस्तित्व की समस्या काफी कम हो जाती है बच्चे स्वयं अपने आय-व्यय एवं दायित्व निर्वहन के मध्य तादात्म्य स्थापित करते रहते हैं। इसके साथ-साथ 16 प्रतिशत महिलायें यह स्पष्ट करती हैं कि व्यकित को अधिक कठोर न होकर लचीला होना चाहिए। इसी में भलाई है। अतः जैसी परिस्थिति हो उसी के अनुसार ढल जाना चाहिए। 'जैसी बहे बयार पीठ तैसी तब कीजै' की उक्ति को साकार करना चाहिए। केवल 10 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि धीरे-धीरे सामाजिक सहभागिता को कम करके घर-परिवार तक ही सीमित हो जाना चाहिए। न किसी की सुनो और न किसी को सुनाओ। मात्र 08 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि अपनी प्रतिष्ठा व इज्जत रखनी है तो परिवार से अलग रहो। शायद ये वे महिलायें हैं जिनके जीवन साथी जीवित हैं तथा वे अनार्थिक दृष्टि से सम्पन्न प्रतीत होती हैं। इसी तरह 2 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि परिवारीजनों पर कठोर नियन्त्रण रखने से व्यक्ति की अधिसत्ता एवं प्रभुत्व बना रहता है। कारण यह है कि इस प्रकार के व्यवहार से सभी लोग डरते रहते हैं। अतः सर या नजर उठाने की हिम्मत ही नहीं करते हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि परिवारीजनों के स्वर से स्वर मिलाना, विवाहित बच्चों को परिवार की बागडोर सौंपना तथा परिवार की परिस्थिति के अनुसार ढल जाना अर्थात् परिवारीजनों के समक्ष आत्मसमर्पण करना ही अधिसत्ता एवं प्रभुत्व बनाये रखने हेतु लाभदायक सिद्ध होते हैं।

(४) <u>महिलाओं के सामाजिक जीवन में अनुभव व बोधगम्यता की समस्या-</u>

व्यक्ति की अधिसत्ता एवं प्रभुत्व के अस्तित्व का सीधा सम्बन्ध उसकी जीवन शैली से होता है। व्यक्ति अपने स्वभाव के आधार पर ही परिवार एवं समाज में कुछ

ऐसे कार्य-कलाप सम्पन्न करता है जिसके आधार पर उसकी अधिसत्ता, प्रभाव व प्रभुत्व निश्चित किया जाता है। इसी से यह भी ज्ञात होता है कि व्यक्ति कितना स्वार्थी है और कितना परार्थी है। इसी स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए प्रतिचयित समस्त महिला सूचनादाताओं से आग्रह किया गया कि कृपया स्पष्ट करें कि उनकी आवश्यक क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य प्रमुख क्रिया-कलाप कौन-कौन से हैं? इस सन्दर्भ में जो तथ्य प्राप्त हुए उन्हें एकत्र कर तालिका संख्या 5.10 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.१०

महिलाओं द्वारा किये जाने वाले आवश्यक क्रिया-कलापों का विवरण

महिलाओं के क्रिया-कलाप	आवृत्ति	प्रतिशत
घर-गृहस्थी के कार्यों में सहयोग करना	228	76.00
शिशुओं के व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी कार्यों में योगदान करना	174	58.00
स्वाध्याय, भजन, पूजन एवं तीर्थाटन करना	120	40.00
समाज के पिछड़े वर्ग के उत्थान हेतु प्रयास करना	78	26.00

नोट : खुला प्रश्न है अतः योग नहीं होगा।

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 76 प्रतिशत महिलायें यह व्यक्त करती हैं कि यथाशक्ति घर-गृहस्थी के कार्यों में सहयोग करना उनका प्रमुख कार्य है। इससे आपसी सौहार्द बना रहता है। तथा गृहस्थी के विषय में पर्याप्त जानकारी बनी रहती है। जिससे घरवाले अधिक से अधिक सम्मान करते हैं। इसी तरह 58 प्रतिशत महिलायें यह स्पष्ट करती हैं कि पुरुषों की तुलना में महिलायें छोटे-छोटे बच्चों की

देखरेख अधिक अच्छी तरह से कर सकती हैं क्योंकि वे अधिक अनुभवी होती है। उनका शिशुओं से मनोवैज्ञानिक लगाव होता है। तथा शिशु उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान का प्रतीक होते हैं वे अपने को माँ कहलाने में गर्वानुभूति करती हैं। शिशुओं को खिलाना, लोरी सुनाकर सुलाना, उनकी देखरेख करना, कहानी, किस्से गीत आदि सुनकर ज्ञानवर्द्धन करना, उनके माध्यम से अपनी बात (परेशानी) घरवालों तक पहुँचाना आदि बहुत से ऐसे कार्य हैं जो महिलाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसी तरह 40 प्रतिशत महिलाओं ने स्पष्ट किया कि स्वाध्याय, भजन, पूजन एवं तीर्थाटन करना उनका मनपसन्द काम है। इससे न केवल मन को शान्ति मिलती है बल्कि घर के अनेक झंझटों से मुक्ति मिलती रहती है। इसके विपरीत 26 प्रतिशत ऐसी भी महिलायें हैं जिन्होंने व्यक्त किया कि वे समय-समय पर समाज के पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के लोगों को यह शिक्षा एवं सुझाव देती रहती हैं कि उनका उत्थान कैसे हो सकता है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि दैनिक दिनचर्या के कार्यों के अतिरिक्त घर गृहस्थी के कार्यों में यथासम्भव सहयोग करना; शिशुओं के व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी कार्यों में योगदान करना, स्वाध्याय, भजन, पूजन, व तीर्थाटन करना प्रमुख कार्य हैं। ये कार्य भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महिला की सामाजिक एवं पारिवारिक अधिसत्ता एवं प्रभुत्व बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

व्यक्तियों, समूहों, साँस्कृतिक तत्वों एवं साँस्कृतिक संकुलों के बीच सुसंगत, सद्भावपूर्ण तथा सन्तोषजनक सम्बन्धों की व्यवस्था अथवा प्रक्रियाओं को जिसके द्वारा इस प्रकार के सम्बन्धों की रचना होती है, सामाजिक समायोजन कहते हैं।

सामान्यतः कभी-कभी समायोजन की अवधारणा का प्रयोग सामाजिक अनुकूलन (एडाप्टेशन) अथवा समन्जन के अर्थों में भी कर लिया जाता है। जबकि इनमें पर्याप्त अन्तर है। समायोजन वह स्थिति है जिसमें विभिन्न व्यक्ति या समूह निरन्तर एक

विशेष पर्यावरण में रहने के कारण या एक-दूसरे के सम्पर्क में रहने के कारण अपनी अभिरूचियों, हितों एवं लक्ष्यों के मार्ग में आने वाली बाधाओं को सहन करने में अभ्यस्त हो जाते हैं ताकि वे सामाजिक प्रणाली की आशाओं के अनुरूप व्यवहार करते हुए उसमें अपना समुचित स्थान बना सकें। इसका विपरीत कुसमायोजन होता है जो एक ऐसी स्थिति का संकेत करता है। जिसमें विभिन्न व्यक्ति या समूह समाज में प्रचलित मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और साँस्कृतिक मानदण्डों के अनुरूप व्यवहार नहीं कर पाते और इस तरह वे अपने पर्यावरण के साथ समायोजन (एडजस्टमेन्ट) नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप उनका व्यवहार सामान्य नहीं रह जाता। इसके साथ-साथ अनुकूलन शब्द का प्रयोग जैविकीय अर्थ में किया जाता है। जैविकीय अर्थ में किसी जीव का अपने पर्यावरण के साथ समायोजन की प्रक्रिया को अनुकूलन कहते हैं। जब एक व्यक्ति अथवा समूह अपने व्यवहार को सामाजिक पर्यावरण अर्थात् अन्य समूहों, संस्थाओं तथा सम्पूर्ण समाज के अनुरूप इस प्रकार ढालता है कि उसका अस्तित्व बना रहे तब यह प्रक्रिया सामाजिक अनुकूलन कहलाती है।

अनुसूचित जाति की महिलावस्था की प्रक्रिया को सही तरीके से अध्ययन करने में सामाजिक समायोजन एक प्रमुख अध्ययन पक्ष माना जाता है।

(५) महिलाओं में पुरुषों के समान प्रस्थिति निर्धारण की समस्या-

भारतीय सामाजिक परिस्थिति में अतीत में नारी प्रस्थिति क्या थी? इस सन्दर्भ में दो मान्यताएँ मिलती हैं। एक मान्यता के अनुसार प्राचीन भारत वर्ष में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरुषों के बराबर थी जबकि दूसरे के अनुसार स्त्रियों का न केवल अपमान होता था बल्कि उनके प्रति घृणा भी प्रदर्शित की जाती थी। नारी प्रस्थिति का ऐतिहासिक परिदृश्य यह संकेत करता है कि भारतीय समाज में सैद्धान्तिक धरातल पर प्राचीन समय से लेकर आज तक नारी को सम्मानित स्थिति मिली है। हिन्दू आदर्शानुसार स्त्रियाँ अर्धांगिनी कही गयी हैं। किन्तु व्यावहारिक धरातल पर नारी

प्रस्थिति की दशा अत्यंत दयनीय है जिसे विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों- वेद, उपनिषद, गृहसूत्र, धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ, रामायण एवं महाभारत तथा पुराण आदि में ऐतिहासिक क्रम में देखा जा सकता है।

अनुसूचित जाति महिलाओं पर भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने से ज्ञात होता है कि उनकी प्रस्थिति पुरुषों के सापेक्ष कमोवेश उच्च हिन्दू जाति महिलाओं जैसी ही रही है। कुछ विशेष सन्दर्भों में जैसे आर्थिक स्वतन्त्रता घर से बाहर निकलने आदि क्षेत्रों में अनुसूचित जाति महिलाओं को अन्य महिलाओं की तुलना में कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त है फिर भी सामाजिक दृष्टि से ये महिलाएँ भी अन्य जाति हिन्दू महिलाओं के समान प्रस्थिति का ही वहन करती प्रतीत होती हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाएँ आत्मनिर्भर होने और कहीं-कहीं पति से अधिक कमाने के वावजूद भी पतियों से पिटती रहती हैं। इसलिए स्त्री की समस्या को केवल आर्थिक प्रश्न के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। वहाँ गरीबी के साथ अशिक्षा/पिछड़ा मानसिक स्तर, और ढीले नैतिक मूल्यों का दुरुपयोग इसके पीछे है। दलित वर्ग की स्त्रियों का हर काल में शोषण भी इन तीनों मिली जुली स्थितियों का परिणाम है, केवल गरीबी के कारण नहीं। अन्यथा मध्यकाल की देन 'नारी पुरुष की सम्पत्ति' वाली धारणा समाज के सभी वर्गों में मौजूद है। हर वर्ग में स्त्री-सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं नारी से अधिक पुरुष पर है। अपनी संस्कृति से कटकर पश्चिमीकरण के रंग में रंग कर सुविधा सम्पन्न उच्च वर्ग भी भीतर से अस्थिर और दुविधाग्रस्त है। मध्यकालीन स्थितियों के अवशेष के रूप में नयी रुढ़ियों, गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, शिक्षा के साथ जुड़े विभाजित मन, रूढ़िवादी परम्पराओं से मोह, भीतरी असुरक्षा के कारण पहले से भी अधिक पुरुष का अधिक पिछलग्गू होना, नये मूल्यों या आधुनिकता के नाम पर वासना की अधिक गुलामी के कारण शिक्षित-प्रशिक्षत आजाद होकर भी पुरुषों की पहले से ज्यादा गुलामी जैसी अनेक स्थितियों और एक नारी द्वारा

दूसरी नारी के प्रति क्रूर व इर्ष्यालु होना उसके मार्ग में रोड़े अटकाने वाली अपनी ही कमजोरियाँ नारी की वर्तमान स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

इस परिदृश्य को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययनगत अनुसूचित जाति महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि महिला और पुरुष प्रस्थिति क्या समान है? में उनकी क्या राय है? इस प्रश्न के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तरदाताओं द्वारा व्यक्त किये गये प्रतिक्रियाओं को तालिका संख्या 5.11 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.११

पुरुषों के समान महिलाओं की प्रस्थिति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

प्रस्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
पुरुषों की प्रस्थिति ऊँची है	264	88.00
महिलाओं की प्रस्थिति ऊँची है	09	03.00
पुरुष-महिला की प्रस्थिति समान है	27	09.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश 88 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता पुरुषों की प्रस्थिति आज भी महिलाओं की तुलना में अधिक ऊँची मानती हैं 9 प्रतिशत महिला उत्तरदाता महिला-पुरुष प्रस्थिति को आधुनिक शिक्षा के प्रारूप रोजगार के अवसर, वैधानिक व्यवस्था के प्रभाव आदि को दृष्टिगत रखते हुए समान मानती हैं जबकि मात्र 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने महिला प्रस्थिति को ही ऊँचा मानती हैं। अर्थात् कुल 12 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलायें आधुनिक सामाजिक परिवेश में महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन के पक्ष में अभिव्यक्ति प्रदान की है जो कि महत्वपूर्ण तथ्य है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं को प्रायः अन्य ऊँची

जाति हिन्दू महिलाओं की तुलना में आर्थिक पराश्रयता का बहुत सामना नहीं करना पड़ता बहुत स्थितियों में तो ये महिलाएँ ही परिवार की अर्थोपार्जन की प्रमुख कड़ी होती हैं। घर से बाहर निकलने में भी इन्हें अन्य महिलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा स्वतन्त्रता प्राप्त है।

(६) **महिलाओं द्वारा वैधानिक व्यवस्था की जानकारी की समस्या-**

भारतीय संविधान में महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान करने के लिए राज्यों को यह शक्ति प्रदान की है कि वे ऐसा कानून बना सकते हैं जो महिलाओं के पक्ष में हो जिससे उनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक न्याय में वृद्धि हो सके। इसके लिए राज्यों ने ऐसे अनेक उपबन्धों का प्रावधान किया है। जिससे महिलाओं के उत्पीड़न एवं उनके प्रति भेदभाव को कम करने में सफलता मिल रही है। फिर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हमारा संविधान एवं वर्तमान कानून महिलाओं के हितों की रक्षा कर पाने में सक्षम नहीं हो पा रहा है। कानूनों की समीक्षा एवं इसमें संशोधन की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

भारतीय संविधान में महिलाओं के हितों की रक्षा हेतु अनेक विधानों का उपबन्ध किया गया है-

(1) महिलाओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1956

(2) दहेज निरोधक अधिनियम 1961

(3) सतीप्रथा निषेध अधिनियम 1987

(4) घरेलू हिंसा नियम 2000

(5) बाल विवाह निषेध अनिनियम 1929

(6) पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984

(7) अभिभावक एवं संरक्षक अधिनियम 1890

(8) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925

(9) विवाहित महिलाओं का सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम 1874

(10) हिन्दू विवाह अधिनियम 1959

(11) प्रसव पूर्व लिंग जाँच प्रतिषेध अधिनियम 1994

(12) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948

इसके अतिरिक्त भारत सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने भी महिलाओं के विकास एवं कल्याण के लिए अनेक सकारात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया है जिससे किशोरी शक्ति योजना तथा किशोरियों हेतु पोषण कार्यक्रम सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण की योजनाओं के अन्तर्गत स्व-सहायता दल स्वयं सिद्धा योजना तथा स्औप कार्यक्रम का संचालन किया गया है।

बावजूद इसके भारतीय महिलाओं विशेष रूप से अनुसूचित जाति महिलायें इन सामाजिक विधानों तथा विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं से लाभान्वित होती प्रतीत नहीं हो रही हैं।

इस तथ्य के आलोक में प्रतिदर्श में सम्मिलित अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया लेने का प्रयास किया गया कि क्या उन्हें महिलाओं के लिए सरकार द्वारा किये गये विभिन्न कार्यक्रमों एवं सामाजिक विधानों की जानकारी है? इस प्रश्न के प्रति उत्तर में उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 5.12 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.१२

सामाजिक विधानों की जानकारी के प्रति उत्तरदाताओं के विचार

विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक विधानों की जानकारी है।	96	32.00
समाजिक विधानों की जानकारी नहीं है।	204	68.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश 68 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता को सामाजिक विधानों की जानकारी नहीं है जबकि एक तिहाई उत्तरदाताओं को ही सामाजिक विधानों की जानकारी है। उल्लेखनीय है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित अधिकांश उत्तरदाता अशिक्षित अथवा कम पढ़ी लिखी होने के कारण विधानों के प्रति अनभिज्ञ हैं। अतः कहा जा सकता है कि अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव में अधिकांश महिला उत्तरदाता सामाजिक विधानों के लाभ से वंचित हैं।

(७) समस्याओं के निवारण हेतु परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था की प्रासंगिकता-

भारत में अतीत काल से ही जाति व्यवस्था सुदृढ़ रही है साथ ही भारतीय जीवन संगठन वर्णाश्रम पर आधारित रहा है। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रस्थिति एवं भूमिका पूर्व निश्चित रही है। परम्परागत हिन्दू समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसके पूर्व जीवन काल में कार्यों के प्रति पूर्व निर्धारित निर्देश तथा मान्यताएँ स्थापित रही हैं।

महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में श्रम विभाजन सिद्धान्त के अन्तर्गत उनकी भूमिकाओं का वर्गीकरण किया गया है। इसी प्रकार जाति व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था भी महिलाओं के अधिकार तथा कर्त्तव्यों का निर्धारण किया है। जीवन के विभिन्न पक्षों में परम्परागत हिन्दू सामाजिक विधान प्रभावित करती रही है। महिलाओं को पुरुषों के सापेक्ष सीमित अवसर एवं अधिकार प्रदत्त थे।

आधुनिक सामाजिक सन्दर्भों में वैश्वीकरण, उदारवाद, सामाजिक गतिशीलता, भौतिकवाद तथा व्यक्ति वाद की मान्यताओं में व्यक्ति के समक्ष समानता का अवसर उपलब्ध कराये। वर्तमान में शिक्षा का प्रसार तथा पश्चिमी मूल्यों एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भारतीय जीवन शैली को बदलती हुई प्रतीत होती है। भारत में महिलायें विशेष रूप से अनुसूचित जाति महिलायें भी इन नवीन आधुनिक मूल्यों से प्रभावित प्रतीत हो रही हैं।

परम्परागत मूल्य तथा मान्यताएँ शिथिल हो रही हैं संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है पुरुषों की अधिसत्ता में ह्रास हो रहा है। महिला सशक्तीकरण का विकास हो रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में प्रतिदर्श में सम्मिलित महिला उत्तरदाताओं से परम्परागत सामाजिक विधानों की प्रासंगिकता के प्रति दृष्टिकोण जानने का शोधकर्ता द्वारा प्रयास किया गया है। उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों को वर्गीकृत करके तालिका संख्या 5.13 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-५.१३

सामाजिक विधानों की प्रासंगिकता के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

प्रासंगिकता	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रासंगिक है	114	38.00
प्रासंगिक नहीं है	186	62.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश (62 प्रतिशत) अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाता अपने कल्याण के प्रति परम्परागत सामाजिक विधानों को अपर्याप्त मानती हैं जबकि 38 प्रतिशत महिला उत्तरदाता आज भी परम्परागत सामाजिक विधानों की प्रासंगिकता को स्वीकार करती हैं यहाँ उल्लेखनीय है कि अधिक उम्र तथा कम पढ़ी लिखी महिला उत्तरदाता अपने रूढ़िगत सोच के कारण प्राचीन मूल्यों तथा रीति-रिवाज में विश्वास करने के कारण ही परम्परागत सामाजिक विधानों को प्रासंगिक मानती हैं। इसके विपरीत अधिक पढ़ी लिखी महिला उत्तरदाता प्रगतिशील विचारों की पोषक होने के कारण परम्परागत सामाजिक विधानों को अप्रासंगिक मानती हैं।

अध्याय - 6

नारी जीवन की जटिलताएँ एवं सामाजिक विधान

- ➢ विवाह जनित जटिलताएँ एवं न्यायिक व्यवस्था
- ➢ उत्तराधिकार की समस्या एवं न्यायिक प्रक्रिया
- ➢ अस्पृश्यता से सम्बद्ध जटिलताएँ एवं न्यायिक प्रक्रिया
- ➢ आरक्षण लाभ से सम्बद्ध पक्ष एवं न्यायिक प्रक्रियां
- ➢ नारी उत्पीड़न सम्बन्धी संवेदनशील सन्दर्भ तथा न्याय व्यवस्था
- ➢ धार्मिक जीवन की जटिलताएँ एवं वैधानिक सुविधाएँ
- ➢ नारी जीवन की जटिलताओं के निवारण में सामाजिक विधानों की प्रासंगिकता

नारी जीवन की जटिलताएँ एवं सामाजिक विधान-

यद्यपि गत तीन दशकों में महिलाओं और बच्चों के पोषण दर्जे में काफी सुधार हुआ है फिर भी, कुपोषण का मौजूदा स्तर अभी भी काफी ऊँचा है। महिलाओं के पौषणिक दर्जे में सतत् सुधार सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है कि समग्र विकास नीति के सन्दर्भ में कुपोषण की स्थिति की गम्भीरता को समझा जाये तथा उसका निदान किया जाये। महिलाएं विशेषकर प्रजनन आयु वर्ग की महिलायें, प्रसव के दौरान मृत्यु की शिकार हो सकती हैं। इसलिए सरकार ने बाल विकास सेवा कार्यक्रम के माध्यम से गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए पूरक पोषण प्रसव, प्रसव-पूर्व और प्रसवोपरान्त स्वास्थ्य जाँच तथा स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा जैसे कार्यक्रमों पर बल दिया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पूरक पोषण, स्वास्थ्य जाँच सन्दर्भ सेवायें जैसी सुविधायें प्रदान की जाती है। 1993 में अंगीकृत राष्ट्रीय पोषण नीति में विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह के कार्यों का अभिनिर्धारण किया गया है। इसके अनुपालनार्थ, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का खाद्य एवं पोषण बोर्ड शिशुओं और छोटे बच्चों के पोषण, मानीटरन आदि मुद्दों के समाधान के लिए उपाय कर रहा है।

बालिका की उत्तरजीविता और कल्याण सुनिश्चित करना, बाल विवाह निषेध विधेयक-

मादा भ्रूण हत्या और बालिका शिशु हत्या की बढ़ती घटनाएँ जिनके फलस्वरूप बालक-बालिका (0-6 वर्ष के आयु वर्ग में) अनुपात 161 में 976 से घटकर 2001 में

927 हो गया है, बालिका के प्रति समाज के नजरिये को दर्शाती हैं मातृ मृत्यु-दर और शिशु मृत्यु-दर को कम करने के लिए बाल विवाह की समस्या को हल करने की आवश्यकता है। आम जनता को शिक्षित करने के लिए लड़कियों को बोझ न समझकर समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा समझना चाहिए, राष्ट्र-व्यापी जागरूकता और संचेतना अभियान सरकार आयोजित कर रही है। बालिका भ्रूण-हत्या, बालिका शिशु हत्या के दुष्परिणामों के बारे में समाज के विभिन्न वर्गों और अन्य सम्बन्धित लाभों में जागरूकता पैदा करने और उन्हें संवेदनशील बनाने के लिए वर्ष 2006-07 के दौरान महिला विकास मंत्रालय द्वारा अनेक संचेतना कार्यक्रम और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किये गये। गर्भाधान पूर्व और प्रसव-पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994 के कार्यान्वयन और प्रबोधन में परिवार कल्याण मंत्रालय के सहयोग से कार्य किया जा रहा है।

सरकार ने 21.09.2006 को आयोजित अपनी बैठक में बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929, को निरस्त करके बाल विवाह निषेध अधिनियम बनाये जाने के प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया। तत्पश्चात् *बाल विवाह निवारण विधेयक, 2004* में संशोधन कर राज्य सभा द्वारा 14.12.2006 को तथा बाल विवाह निषेध विधेयक, 2006 को लोक सभा द्वारा 19.12.2006 को पारित कर दिया गया।

महिलाओं एवं बच्चों के अवैध व्यापार का निवारण-

वेश्यावृत्ति के प्रयोजनार्थ अवैध देह-व्यापार की बढ़ती घटनाएं चिंता का विषय हैं, विशेषकर इस तथ्य के आलोक में कि 40 प्रतिशत तक वैश्याएँ बालिका हैं। इस समस्या के समाधान के लिए, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय स्रोत, गन्तव्य और पारम्परिक क्षेत्रों में अवैध देह व्यापार के निवारण और रोकथाम के लिए एक प्रायोगिक परियोजना कार्यान्वित कर रहा है। वर्ष 2006-07 के दौरान, मंत्रालय ने इन समस्याओं के समाधान के लिए कार्यवाई आरम्भ की, जैसे सीमापार से आने वाले

व्यक्तियों का प्रत्यावर्तन, प्रशिक्षण मॉड्यूल का विकास तथा विभिन्न श्रेणी के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण और उनकी क्षमता का निर्माण, अंतरराज्यीय बचाव और प्रत्यावर्तन उपायों को सरल बनाना इस सम्बन्ध में प्रमुख कानून, अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 में संशोधन किया जा रहा है, अवैध देह व्यापार के निवारण और रोकथाम पर सार्क समझौते के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए कानून, कार्यक्रम आदि मौजूद हों।

सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण की योजनाएं-

निर्धन और परिसम्पत्तिविहीन महिलाओं की समस्याओं के समाधान के लिए महिलाओं को स्व-सहायता दलों में संगठित करना, स्व-रोजगार अथवा वेतन रोजगार के माध्यम से आयोत्पादक गतिविधियाँ शुरू करने के लिए ऐसी महिलाओं के हुनर को बढ़ाना आदि। स्वयंसिद्धा योजना के अन्तर्गत महिलाओं के स्व-सहायता दल गठित किये गये हैं। स्टेप कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी असहाय महिलाओं को कृषि, पशु पालन, डेरी, मछली पालन, हथकरधा, हस्तशिल्प, खादी और ग्रामोद्योग, रेशम कीट पालन, समाजिक वानिकी तथा बंजर भूमि विकास जैसी परिम्परिक क्षेत्रों में नई-नई जानकारी प्रदान कर उनके हुनर को बढ़ाया जाता है, जिससे वे अपनी उत्पादकता और आय में वृद्धि कर सकें।

महिलाओं के लिए समर्थन सेवाएँ-

अपने घरों/शहरों से दूर रोजगार करने वाली महिलाओं की सुविधा के लिए कामकाजी महिला होस्टल (दिवस देखभाल केन्द्रों सहित) तथा शिशु गृह जैसी सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं।

कामकाजी और बीमार माताओं के बच्चों के लिए शिशु गृह जैसी समर्थन सेवाओं के प्रावधान से माताएँ अपने आप को आय उत्पादन गतिविधियों में लगा पायेंगी।

महिलाओं को राहत, संरक्षण और पुनर्वास प्रदान करने की स्कीम-

विवादग्रस्त महिलाओं को राहत, संरक्षण और पुनर्वास सेवाएँ प्रदान करना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का एक प्रमुख दायित्व है और यह कार्य स्वाधार आश्रम गृहों, अल्पावास गृहों और महिला हेल्प लाइनों के माध्यम से किया जाता है। स्वाधार तथा अल्पावास गृहों में महिलाओं को आश्रय, भोजन, कपड़े, भावनात्मक समर्थन और परामर्श सेवाएँ प्रदान की जाती हैं जिससे सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से उनका पुनर्वास किया जा सके।

केन्द्रीय समाजकल्याण बोर्ड द्वारा कार्यान्वित महिला मण्डल, जागरूकता विकास, परिवार परामर्श केन्द्र कार्यक्रम-

महिला मण्डल स्कीम के अन्तर्गत बच्चों के लिए बालवाड़ियाँ, महिलाओं के लिए शिल्प गतिविधियाँ, सामाजिक शिक्षा, प्रसूति सेवाएँ आदि प्रदान की जाती हैं।

जागरुकता विकास कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं और पूरे समुदाय में विशेषकर महिलाओं के अधिकारों, उनके दर्जे और उनकी समस्याओं और अन्य समाजिक सरोकारों के बारे में जागरूकता पैदा करना है। जागरूकता विकास शिवर आयोजित करने का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण एवं निर्धन महिलाओं की आवश्यकताओं का पता लगाना और विकास तथा अन्य सम्बन्धित कार्यक्रमों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना है। परिवार परामर्श केन्द्र स्कीम के अन्तर्गत ऐसी महिलाओं और बच्चों को परामर्श, सन्दर्भ और पुनर्वास सेवाएँ प्रदान की जाती हैं, जो अत्याचारों और पारिवारिक कुसमायोजन के शिकार होते हैं। ये केन्द्र स्थानीय प्रशासकों, पुलिस, न्यायालय, चिकित्सा संस्थाओं आदि के सहयोग से कार्य करते हैं।

कुछ परिवार परामर्श केन्द्र पुलिस मुख्यालयों, महिला कारागारों, बलात्कार अन्तःक्षेप केन्द्रों, विवाहपूर्ण परामर्श केन्द्रों और देवदासी केन्द्रों/वेश्यावृत्ति वाले क्षेत्रों में चलाये जा रहे हैं।

महिलाओं को न्याय और कानूनी सुरक्षोपाय-

महिलाओं के अधिकरों के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, उनके हितों की सुरक्षा राष्ट्रीय महिला आयोग का अधिदेश है। राष्ट्रीय महिला आयोग महिलाओं से प्राप्त शिकायतों की सुनवाई करता है। आयोग ने महिलाओं से सम्बन्धित मुद्‌दों पर कई कार्यशालाएँ, जाकरुकता कार्यक्रम, कानूनी जाकरुकता कार्यक्रम तथा पारिवारिक महिला लोक अदालतें भी प्रायोजित की हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग ने फरवरी 2006 में "चलो गाँव की ओर" नामक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की संकल्पना तैयार की। यह कार्यक्रम पूरे देश में ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक कदम है, जिससे ग्रामीण महिलाओं को कानून के अन्तर्गत उनके अधिकरों की जानकारी दी जाती है।

महिलाओं से सम्बन्धित अथवा महिलाओं पर प्रभाव डालने वाले 44 केन्द्रीय अधिनियम हैं, जिनमें से 41 अधिनियमों की राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा समीक्षा की गयी है; जिससे उन्हें और अधिक कारगर बनाया जा सके और महिलाओं को सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके।

(1) **विवाह जनित जटिलताएँ और न्यायिक प्रक्रिया-**

परम्परागत हिन्दू समाज में विवाह सम्बन्धी अनेक मान्यताएँ सदियों से प्रभावी रही हैं। समय और परिस्थितियों के साथ ऐतिहासिक कारणों से विवाह से सम्बन्धित मान्यताएँ रुढ़िगत होती गयी। परिणामस्वरूप हिन्दू स्त्रियों का जीवन बहुत ही कष्टकर होता गया। विवाह से सम्बन्धित अनेक जटिलताएँ- बाल विवाह प्रचलन, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, बहुपत्नी/बहुपति प्रथा, कुलीन विवाह, वेमेल विवाह, अन्तःजातीय विवाह, दहेज सम्बन्धी प्रथा, विवाह-विच्छेद सम्बन्धी समस्याएँ आदि प्रचलन में रहीं हैं।

किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार तथा उनके सम्मान में विकास के लिए अनेक संवैधानिक उपबन्धों का भारतीय संविधान में उपबन्ध किया। परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के 60 वर्षों के उपरान्त आज की महिलाएँ अपने आप को तत्कालीन महिलाओं की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र, सम्मानजनक स्थिति में महसूस कर रही हैं। फिर भी महिलाओं में विशेषकर कमजोर वर्ग की महिलाएँ अनुसूचित जाति महिलाएँ अनेक सामाजिक, शैक्षिक बाधाओं के कारण इन वैधानिक उपबन्धों का भरपूर उपयोग अपने प्रस्थिति निर्धारण में नहीं कर पा रही हैं। महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण हेतु भारत सरकार ने विवाह सम्बन्धी जटिलताओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित विधानों को लागू किया है:-

(1) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

(2) सती प्रथा निवारण अधिनियम, 1829, 1987

(3) हिन्दू विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम, 1856

(4) बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1872, 1929, 1978

(5) विशेष विवाह अधिनियम, 1872, 1923, 1954

(6) हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1955, 1976

(7) दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम 1961, 1984, 1986 आदि

(8) यौन उत्पीड़न संरक्षण विधेयक, 2005

अनुसूचित जातियों एवं कमजोर वर्गों में विवाह सम्बन्धी जटिलताओं तथा तत्सम्बन्धी न्यायिक प्रक्रियाओं का विवरण देखते हुए अनुसंधानकर्ता ने प्रतिदर्श में शामिल अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं से विवाह जनित जटिलताओं के बारे में उनकी प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया। प्राप्त तथ्यों को संकलित कर तथा विश्लेषित करने के लिए तालिका संख्या 6.1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-६.१

विवाह जनित जटिलताओं की प्रकृति के प्रति उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण

जटिलताएं	आवृत्ति	प्रतिशत
बाल विवाह की समस्या	90	30.00
दहेज प्रथा की समस्या	63	21.00
सती-प्रथा की समस्या	15	05.00
विधवा पुनर्विवाह की समस्या	18	06.00
विवाह-विच्छेद की समस्या	30	10.00
विवाह सम्बन्धों के तय करने में स्वतन्त्रता की समस्या	84	28.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश 30 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं ने विवाह जनित जटिलताओं में बाल विवाह की समस्या को स्वीकार किया है। 28 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं की राय में वैवाहिक सम्बन्धों के निर्धारण में महिलाओं को निर्णय लेने की स्वतन्त्रता का अभाव है। 21 प्रतिशत ने दहेज सम्बन्धी समस्याओं को स्वीकार किया है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं की राय में विवाह-विच्छेद/तलाक सम्बन्धी समस्याएँ, 6 प्रतिशत के अनुसार विधवा पुनर्विवाह सम्बन्धी समस्याएँ हैं। सबसे कम 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यद्यपि सती-प्रथा की समस्या का उल्लेख किया है किन्तु उनका मानना है कि इसके अन्य कारण भी प्रभावी हैं।

इस प्रकार विवाह जनित जटिलताएँ जो प्रायः अनुसूचित जाति महिलाएं महसूस करती हैं उनमें प्रमुखतः बाल विवाह की समस्या, दहेज की समस्या, वैवाहिक निर्णयों में स्वतन्त्रता की समस्या ही प्रमुख है।

प्रमुख सामाजिक विधान-

(अ) सती-प्रथा निवारण अधिनियम, 1829, 1987[1]-

सन् 1929 से पहले सती-प्रथा भारत में अत्यधिक प्रचलित थी। इसका रूप इतना कटु ओर अमानुषिक था कि इसका प्रचलन सभ्य समाज में कैसे सम्भव हो सका यह वास्तव में आश्चर्य का विषय है। फिर भी इसका राजनीतिक और धार्मिक आधार अवश्य ही था मुसलमानों के आ जाने के बाद हिन्दुओं में रक्त की शुद्धता को बनाए रखने की समस्या काफी गम्भीर हो गई थी। क्योंकि मुसलमानों को हिन्दू स्त्रियों से यहाँ तक कि विधवाओं से भी विवाह करने में कोई आपत्ति न थी। इस कारण एक ओर बाल-विवाह का बहुत प्रचलन हुआ और दूसरी ओर विधवाओं को यह लालच दिखाकर कि अपने पिता की चिन्ता में जिन्दा जलकर मर जाने से उन्हें सीधा स्वर्ग मिलेगा, समाज से विधवाओं का नाम तक मिटा देने का प्रयत्न किया गया। परन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा अमानुषिक और हृदय-स्पर्शी हो गई। सती होना तब विधवाओं की इच्छा पर निर्भर न रहकर तथाकथित समाज-नेताओं के आदेश पर आधारित हो गया।

समाज-सुधारक *राजा राममोहन राय* ने इस प्रथा का सर्वप्रथंम घोर विरोध किया और उनके नेतृत्व में जो आन्दोलन उस समय बंगाल में चला उसके फलस्वरूप सन् 1829 में *'सती-प्रथा निवारण अधिनियम'* पास किया गया, जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी भी विधवा को सती होने के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता करेगा तो वह दण्डनीय अपराधी होगा। धीरे-धीरे जनमत भी इस नियम के अनुकूल हो गया, जिसके कारण आज यह प्रथा प्रायः समाप्त हो गयी है। सन् 1887 में सरकार ने इस अधिनियम की विस्तृत समीक्षा करके उसे और अधिक प्रभावी बनाया है।

(ब) हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम, 1856[2]-

विधवा-पुनर्विवाह पर निषेध अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। आज भारत में लगभग दो करोड़ विधवाएँ हैं। विधवा-पुनर्विवाह के निषेध विशेषकर ऊँची जातियों में हैं और इस सम्बन्ध में विधवाओं की दो विशेष निर्योग्यताएँ थीं-

(क) पुनर्विवाह सम्बन्धी नियोग्यता और

(ख) मृत पति की सम्पत्ति में अधिकार सम्बन्धी निर्योग्यता।

राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और साथ ही *आर्य समाज* तथा *ब्रह्म समाज* के प्रयत्नों से सरकार का ध्यान विधवा-विवाह की समस्या की ओर आकर्षित हुआ और उक्त दोनों निर्योग्यताओं को सरकार ने दो अधिनियमों के द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया। ये अधिनियम हैं- *"हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम, 1856"* और *"हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937"*।

विधवाओं की पुनर्विवाह सम्बन्धी निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए *'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम'* सन् 1856 में पास किया गया। इसके अनुसार विधवाओं की पुनर्विवाह सम्बन्धी कानूनी अड़चनों को दूर किया गया। इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्न हैं:-

- यदि विवाह के समय किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो चुकी हो, तो उसका दूसरा विवाह वैध है।
- इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न होने वाली कोई भी सन्तान अवैध न होगी।
- यदि पुनर्विवाह करने वाली नाबालिग है और पहले पति से उसका यौन-सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ है तो पुनर्विवाह करने के लिए पिता, दादा, बड़े भाई या नजदीक के किसी पुरुष की स्वीकृति आवश्यक है।

- यदि विधवा बालिग है और यदि पुनर्विवाह में यौन-सम्बन्ध स्थापित हो चुका है तो विधवा की अपनी स्वीकृति ही काफी है।
- हिन्दू विधवा का पुनर्विवाह अपने पूर्वमृत पिता की सम्पत्ति, भरण-पोषण या वसीयतनामा के द्वारा प्राप्त सीमित अधिकारों के सम्बन्ध में उसकी मृत्यु की स्थिति के बराबर होगी जब तक कि वसीयतनामें में से पुनर्विवाह के सम्बन्ध में स्पष्ट आज्ञा प्राप्त न हो। अर्थात् पुनर्विवाह करने वाली विधवा का अपने पूर्वमृत पति की सम्पत्ति आदि पर अधिकार नहीं होगा।
- यदि पति के वसीयतनामा या पति के परिवार के सदस्यों के समझौते के अनुसार उसे पति की सम्पत्ति का पूर्ण अधिकार मिल गया हो, तो वह पुनर्विवाह के बाद भी अपने अधिकारों का उपभोग करती रहेगी।

(स) बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1872, 1929, 1978[3]-

बाल-विवाह के अनेक व्यक्तिगत और सामाजिक दुष्परिणाम हैं। इन्हें रोकने के लिए सरकार की दृष्टि सामाजिक कुरीति की ओर आकर्षित करने का श्रेय *राजा राममोहन राय* और *श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर* को है। इनके प्रयत्नों से सन् 1807 एवं 1891 में बाल-विवाह के रोकने के अधिनियम पारित हुए। फिर एक अधिनियम हरविलास शारदा 1929 में पास हुआ इस एक्ट को शारदा एक्ट के नाम से कहते हैं। यह 1930 में लागू किया गया। जो इस प्रकार है:-

- बाल-विवाह को रोकने का प्रयत्न किया जायेगा
- कोई भी विवाह, जिसमें वर की आयु 18 वर्ष से कम और कन्या की आयु 18 वर्ष से कम है तो विवाह नहीं किया जा सकेगा।
- विवाह संस्कार को कराने वाले या उसका निर्देश देने वाले व्यक्ति को 3 माह का कारावास और जुर्माना हो सकेगा।

- ऐसे मुकद्में की सुनवाई केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत में हो सकेगी।
- अदालत को पूर्वसूचना मिल जाने पर वह उस विवाह को रोकने का आदेश दे सकती है।
- अदालत के आदेशों की अवहेलना करने वाले को 3 माह का कारावास या 1000 रुपया जुर्माना अथवा दोनों होगा।

(द) <u>विशेष विवाह अधिनियम,</u> 1872, 1923, 1954[4]-

सन् 1872 के *'विशेष विवाह अधिनियम'* के द्वारा विवाह के धार्मिक प्रतिबन्धों को दूर करके उन सब लोगों को विवाह करने का अधिकार दे दिया गया जो किसी धर्म को नहीं मानते हैं। सन् 1923 में यह अधिनियम संशोधित हुआ। इसके अनुसार अन्तर्जातीय विवाह की वैधानिक अड़चनें दूर हो गईं। इसमें तलाक को भी छूट है।

सन् 1954 के *'विशेष विवाह अधिनियम'* के द्वारा सन् 1872 कर कानून रद्द कर दिया गया। इस कानून का उद्देश्य हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच विवाह की व्यवस्था करना है। अब प्रत्येक व्यक्ति किसी धर्म या जाति में विवाह कर सकेगा और विवाह करते समय पहले की भाँति अब यह भी घोषणा नहीं करनी होगी कि विवाह करने वाले स्त्री-पुरुष किसी धर्म को नहीं मानते हैं। विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवित जीवन-साथी नहीं होना चाहिए, अर्थात् एक-विवाह आवश्यक होगा। 21 वर्ष से कम आयु होने पर माता-पिता या अन्य संरक्षक की अनुमति आवश्यक होगी। ऐसे विवाह की रजिस्ट्री करानी होगी।

(य) <u>हिन्दू-विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम,</u> 1955, 1976[5]-

यह अधिनियम 18 मई, सन् 1955 से जम्मू तथा कश्मीर को छोड़कर शेष सारे भारत में लागू किया गया। इस अधिनियम द्वारा विवाह-सम्बन्धी सभी हिन्दू

विधान रद्द हो गये हैं। 'हिन्दुओं' में हिन्दुओं के अतिरिक्त बौद्ध, जैन और सिक्ख भी सम्मिलित हैं। अनुसूचित जनजातियों पर यह अधिनियम लागू न होगा। इस अधिनियम की विवेचना निम्नलिखित चार आधारों पर की जा सकती हैं:-

(क) हिन्दू-विवाह की शर्त-

हिन्दुओं में विवाह निम्नलिखित शर्तों को पूरा करने से वैध होगा। विवाह के समय- (1) किसी पक्ष पर जीवन-साथी (पति-पत्नी) जीवित न हो; (2) कोई पक्ष पागल या मूढ़ न हो; (3) वर की आयु कम से कम 21 वर्ष की और वधू की आयु कम से कम 18 वर्ष हो; (4) विवाह करने वाले आपस में सपिंड न हों, बशर्ते कि कोई प्रथा, जिसके द्वारा वे नियन्त्रित होते हैं, इस प्रकार के विवाह की आज्ञा न देती हों।

(ख) न्याययिक पृथक्करण-

न्यायिक पृथक्करण का अर्थ यह है कि इसके द्वारा विवाह का सम्बन्ध नहीं टूटता है, केवल पति-पत्नी को परस्पर एक-दूसरे से दूर रहने का अधिकार मिल जाता है। पति या पत्नी निम्न आधारों पर न्यायिक पृथक्करण के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं- (1) आवेदन-पत्र देने के लगातार दो साल पहले से दूसरे पक्ष ने प्रार्थी को छोड़ दिया हो; (2) प्रार्थी के साथ इतने अधिक अत्याचार का व्यवहार किया गया हो कि प्रार्थी के दिमाग में यह उचित भय हो कि दूसरे पक्ष के साथ रहना प्रार्थी के लिए हानिकारक है; (3) दूसरा पक्ष आवेदन-पत्र देने के एक वर्ष पूर्व से विषाक्त कोढ़ से पीड़ित हो; (4) दूसरे पक्ष ने विवाह के बाद किसी अन्य व्यक्ति से यौन-सम्बन्ध कर लिया हो।

(ग) विवाह-विच्छेद-

इस अधिनियम की धारा 13 के अनुसार कोई भी विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व या बाद में किया गया हो, निम्न आधारों पर विवाह-

विच्छेद समाप्त किया जा सकता है- (1) दूसरा पक्ष यदि परव्यक्तिमान का आदी हो; (2) दूसरा पक्ष यदि धर्म परिवर्तन के कारण हिन्दू न रह गया हो; (3) दूसरा पक्ष यदि आवेदन-पत्र के तीन वर्ष पहले से ऐसा पागल हो कि वह इलाज के द्वारा ठीक न हो सके; (4) दूसरा पक्ष यदि तीन वर्ष से विषाक्त कोढ़ से पीड़ित हो; (5) दूसरा पक्ष यदि तीन वर्ष से गुप्त रोग से पीड़ित हो; (6) दूसरे पक्ष ने यदि सन्यास ले लिया हो, (7) दूसरा पक्ष यदि सात वर्ष से जीवित न सुना गया हो; (8) दूसरे पक्ष ने यदि न्यायिक पृथक्करण की राजाज्ञा प्राप्त होने के बाद दो वर्ष या उससे अधिक समय से सहवास न प्रारम्भ किया हो; (9) दूसरे पक्ष ने यदि वैवाहिक अधिकारों के प्रत्यास्थान की राजाज्ञा के बाद दो वर्ष या उससे अधिक समय से उस राजाज्ञा का पालन न किया हो।

(घ) सामान्य धाराएँ-

(1) विवाह-विच्छेद का आवेदन-पत्र विवाह के कम से कम तीन वर्ष के बाद ही दिया जा सकता है। विशेष परिस्थितियों में अदालत तीन वर्ष के पहले भी आवेदन-पत्र स्वीकार कर सकती है; (2) यदि अदालत से विवाह-विच्छेद की राजाज्ञा मिलने के एक वर्ष के अन्दर अपील नहीं की जाती जो दोनों पक्षों को पुनर्विवाह करने का अधिनियम होगा; (3) अदालत विवाह-विच्छेद के बाद प्रार्थी तथा विपक्षी की आर्थिक दशाओं को देखते हुए प्रार्थी से विपक्षी को जीवन-भर के लिए या जब तक विपक्षी विवाह नहीं करता तब तक उसके जीवन-निर्वाह का खर्चा दिला सकती है; (4) अदालत बच्चों की पढ़ाई, देखभाल और रहने के सम्बन्ध में भी अन्तरिम आदेश दे सकती है।

(र) दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम, 1961, 1984, 1986[6]-

अनेक समाज-सुधारकों के अनुसार दहेज-प्रथा को समाप्त करने के लिए सरकारी कानून का पास होना सुधार की दिशा में पहला कदम है। इस कानून का उल्लंघन करते हुए जो भी कुछ दहेज दिया जायेगा वह सभी पत्नी की सम्पत्ति मानी

जायेगी और पत्नी को या उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त होगी। यह विधेयक अब कानून के रूप में 1 जुलाई 1961 से लागू हो गया है। इस अधिनियम में दस धाराएँ हैं उस में से कुछ उल्लेखनीय धाराएँ निम्नलिखित हैं:-

धारा ३- इस धारा के अनुसार यदि व्यक्ति दहेज देता या लेता है या देने-लेने में मदद करता है तो उसे 6 माह का कारावास और पाँच हजार रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

धारा ४- इस धारा के अनुसार यदि वर या कन्या के माता-पिता या संरक्षक या प्रत्यक्ष रूप में कोई व्यक्ति दहेज माँगता है तो उसे भी उपरोक्त दण्ड दिया जा सकता है।

धारा ५- दहेज लेने-देने से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का समझौता गैर-कानूनी होगा।

धारा ६- इस धारा के अन्तर्गत दहेज के उद्देश्य को भी निश्चित कर दिया गया है। दहेज का उद्देश्य केवल विवाह करने वाली कन्या के लाभ के लिए होगा। यदि कन्या के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति विवाह के पहले दहेज स्वीकार करता है तो उसे यह दहेज विवाहित स्त्री को विवाह के एक साल के अन्दर दे देना पड़ेगा। यदि यह दहेज देने के समय नाबालिग है तो उसकी 19 वर्ष की अवस्था तक दे देना होगा। जब तक यह धन (दहेज) उस कन्या को नहीं दे दिया जाता तब तक वह व्यक्ति जिसके पास वह धन है, उसे अपने पास प्रन्यास की हैसियत से ही रख सकता है। इस धन को कन्या को न लौटाने वाले व्यक्ति को भी उपरोक्त दण्ड दिया जायेगा। कन्या की मृत्यु के बाद उस दहेज के धन पर उसके उत्तराधिकारी का अधिकार होगा।

धारा ७- इस धारा के अनुसार इस अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले अपराधों पर तभी विचार करेगी जबकि (अ) इस सम्बन्ध में कोई लिखित शिकायत की जाये, (ब) यह शिकायत किसी प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत में की जाये, तथा (स) दहेज लेन-देन के एक वर्ष के अन्दर ही यह शिकायत कर दी जाये। यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, पंजाब और हिमाचल प्रदेश की राज्य सरकारों ने इस अधिनियम को संशोधित रूप में लागू करके अधिक प्रभावी बना दिया है।

(२) **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956-**

हिन्दू स्त्रियों के सामाजिक अधिकार के सम्बन्ध में यह अधिनियम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस अधिनियम की 4 विशेषताएँ हैं-

(1) उत्तराधिकार से सम्बन्धित दायभाग और पिताक्षरा नियमों को समाप्त कर दिया गया है और समस्त हिन्दुओं के लिए एक समान कानून लागू हो गया है।

(2) हिन्दू स्त्री को सीमित सम्पत्ति को समाप्त करने उसे सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार दिया गया है।

(3) स्त्री और पुरुष उत्तराधिकारियों में किसी का भी भेद नहीं रहा अर्थात् स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार पुरुषों के समान होगा।

(4) स्त्री को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया गया है किन्तु विवाहित पुत्री को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार नहीं होगा। इस अधिनियम के अन्तर्गत स्त्री को पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप में जो सामाजिक अधिकार मिले हैं, वे निम्न हैं:-

(अ) **पत्नी के रूप में :** हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937 के अनुसार विधवा पत्नी के मृत पति की सम्पत्ति में लड़कों के बराबर हिस्सा था, पर यह अधिकार सीमित था। विधवा केवल अपने

जीवन काल में इस सम्पत्ति का उपयोग कर सकती थी। दान में या उपहार में वह इस सम्पत्ति को न तो किसी को दे सकती थी और न ही बेच सकती थी। 1956 में अधिनियम के अनुसार विधवा स्त्री को भी पति की सम्पत्ति पर सीमित नहीं पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया है। सन्तान न होने की दशा में पति की सम्पत्ति पर विधवा का अधिकार होगा पुनर्विवाह की स्थिति में सम्पत्ति पुनः पति के परिवार में लौट जायेगी।

(ब) **माता के रूप में :** सामान्यतः माता को पुत्र की सम्पत्ति में पहले कोई हिस्सा न था। इससे बहुधा माता को पुत्र-बधू और पौत्र-पौत्रियों की दृष्टि में सम्मानित पद प्रदान करने के उद्देश्य से इस अधिनियम में माता को भी पुत्र की सम्पत्ति में पत्नी और बच्चों के समान एक भाग मिलेगा।

(स) **पुत्री के रूप में :** इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व पिता की सम्पत्ति में लड़की का कोई भी अधिकार मान्य न था। अब यह अधिनियम दाय भाग और पिताक्षरा प्रणालियों को समाप्त कर देता है और लड़की को पुत्र के समान ही पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्रदान करता है। पारिवारिक विवाद से बचने के लिए अभी हाल में ही उत्तर प्रदेश की ब.स.पा. सरकार ने विवाहित पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति पर अधिकार समाप्त कर दिया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में अध्ययनगत उत्तरदाताओं से उत्तराधिकार सम्बन्धी प्रश्न किया गया कि क्या उन्हें एक महिला के रूप में पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हैं? इस तथ्य के प्रत्युत्तर में इन उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये प्रतिक्रियाओं को संकलित कर तालिका संख्या 6.2 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-६.२

उत्तराधिकार के प्रति अनुसूचित जाति महिलाओं के दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त है	39	13.00
सम्पत्ति में अधिकार नहीं प्राप्त है	195	65.00
सीमित अधिकार है	66	22.00
कुल योग	300	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश 65 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं हैं। 22 प्रतिशत उत्तरदाता सीमित अधिकर स्वीकार करती हैं जबकि 13 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएँ उत्तराधिकार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण ही व्यक्त की हैं।

अतः कहा जा सकता है कि न्याय संवैधानिक प्रयासों के बावजूद भी अपनी अशिक्षा, रुढ़िवादिता एवं अज्ञानता के फलस्वरूप अभी भी उन्हें न ही उत्तराधिकार प्राप्त है और न ही इसके प्रति वे सचेष्ट ही हैं। उनकी नजर में सम्पत्ति पर पुरुषों का ही स्वामित्व होता है।

(३) अस्पृश्यता से सम्बद्ध जटिलताएँ एवं न्यायिक प्रक्रिया-

अस्पृश्यता और सामाजिक दूरी अभी भी अनुसूचित जातियाँ तथा उच्च्य हिन्दू जातियों में प्रचलन में पायी जा रही है। परिवर्तन केवल इस रूप में दिखाई दे रहा है कि अब इन अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को ऊँची जातियों द्वारा सभाओं तथा बैठकों में बैठने की सीट दी जाने लगी है किन्तु अभी भी उन्हें कुछ दूरी पर ही बैठने दिया जाता है। यद्यपि अब इन्हें सार्वजनिक स्थानों, तालाबों, कुँओं, दुकानों यहाँ तक मन्दिरों तथा स्कूलों में प्रवेश की समस्या नहीं के बराबर है।

अस्पृश्यता की समस्या से प्रतिदर्श में सम्मिलित उत्तरदाताओं का क्या दृष्टिकोण है? यह जानने का प्रयास किया गया है। उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 6.3 में विश्लेषण हेतु प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-६.३

अस्पृश्यता (छुआछूत) की समस्या के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

अस्पृश्यता के प्रति दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
अस्पृश्यता की समस्या है।	105	.35.00
अस्पृश्यता की समस्या अपेक्षाकृत कम है।	159	53.00
अस्पृश्यता की समस्या बिल्कुल नहीं है।	36	12.00
कुल योग	300	100.00

उपुर्यक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश 53 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं के दृष्टिकोण में परम्परागत अस्पृश्यता की भावना में पूर्व की अपेक्षा कमी आयी है। 35 प्रतिशत उत्तरदाता अभी भी अस्पृश्यता की समस्या को महसूस करती हैं। इसके विपरीत 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि आधुनिक युग में अस्पृश्यता की बिल्कुल समस्या नहीं है। आँकड़ों के विश्लेषण से यह भी विदित होता है कि कम पढ़ी लिखी/अशिक्षित एवं निम्न आयवर्ग की महिला उत्तरदाताओं की दृष्टि में ही अस्पृश्यता की समस्या जटिल रूप में आज भी विद्यमान है। इसके विपरीत पढ़ी लिखी कामकाजी महिलाओं को वैश्वीकरण के इस युग में इस समस्या से दो-चार नहीं होना पड़ रहा है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति महिलाओं में आज भी अस्पृश्यता (छुआछूत) की समस्या बनी हुई है यद्यपि फिर भी इसकी तीव्रता में सामाजिक/आर्थिक विकास एवं वैधानिक प्रयासों से जरुर कमी आयी है।

अस्पृश्यता अधिनियम, 1955[6]-

अनुसूचित जातियों की परम्परागत निर्योयताओं को दूर करने के लिए भारतीय संविधान में पर्याप्त व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 पास किया। यह कानून अस्पृश्यता (अपराध) संशोधन और विविध व्यवस्था अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित किया गया है और इस संशोधन के साथ मुख्य अधिनियम का नाम नागरिक सुरक्षा अधिकार अधिनियम, 1955 में बदला गया। संशोधित अधिनियम में अस्पृश्यता से सम्बन्धित अपराध के लिए और अधिक कड़े दण्ड की व्यवस्था की गयी है। इन जातियों को अत्याचारों से पूरी तरह सुरक्षित रखने के लिए सरकार ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम 1989 पारित किया है जो 30 जनवरी, 1990 से लागू हो गया है। इसी के साथ नागरिक अधिकार संरक्षा अधिनियम, 1976 पारित किया गया जिसमें अनुसूचित जातियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक निर्योग्यताओं को दूर करने का प्रयास किया गया है।

अस्पृश्यता कानून को अधिक व्यापक बनाने और इसकी दण्ड व्यवस्था को अधिक कठोर बनाने के लिए अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को अस्पृश्यता (अपराध) संशोधन और विविध प्रावधान अधिनियम, 1979 द्वारा संशोधित किया गया है और ये संशोधन 19 नवम्बर, 1976 से लागू हुए हैं। इन संशोधनों के साथ मुख्य अधिनियम का नाम बदल कर *नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955* कर दिया गया है। इस अधिनियम के अधीन-

- अस्पृश्यता के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सार्वजनिक उपासना-स्थल पर जाने तथा वहाँ उपासना करने और पवित्र तालाबों, कुओं अथवा झरनों से पानी लेने को रोकना दण्डनीय अपराध है।

- इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की सामाजिक अयोग्यता लागू करना यथा-किसी दुकान, सार्वजनिक भोजनालय या शिक्षालय, सार्वजनिक चिकित्सालय, होटल अथवा मनोरंजन के सार्वजनिक स्थल पर जाने से रोकना; किसी सड़क, नदी, कुएँ, तालाब, नल, स्नानघाट, श्मशानघाट, शौचालय, धर्मशाला, सराय अथवा मुसाफिरखाने तथा होटल अथवा भोजनालयों में रखे बर्तनों का उपयोग करने से रोकना भी दण्डनीय अपराध है।
- व्यवसाय अथवा रोजगार के बारे में कोई अयोग्यता लादना, किसी भी धर्मार्थ संस्था से लाभ प्राप्त करने पर रोक लगाना, किसी भी क्षेत्र में रिहायशी स्थान पर निर्माण करने तथा उसमें रहने या किसी सामाजिक अथवा धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान को करने के सम्बन्ध में रोक लगाना भी इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय है।
- इसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति के अछूत होने के कारण उससे कोई व्यापारिक लेन-देन न रखने अथवा उसे सेवाओं से वंचित रखने, अस्पृश्यता उन्मूलन के फलस्वरूप मिले अधिकारों का उपयोग करने के कारण किसी भी व्यक्ति को सताने, चोट पहुँचाने, परेशान करने या उसका बहिष्कार करने अथवा ऐसे व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत करने में योग देने वाले व्यक्ति को भी दण्ड देने की व्यवस्था की गयी है।
- प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, किसी भी प्रकार से अस्पृश्यता के बारे में प्रचार करने या ऐतिहासिक, दार्शनिक और धार्मिक आधार पर या जातिवाद के आधार पर अस्पृश्यता को व्यवहार में लाने को इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध माना जायेगा।
- अस्पृश्यता की आड़ में किसी से भी जबरदस्ती सफाई, या झाड़ू लगवाना, लाश

उठवाना, किसी जानवर का चमड़ा उतरवाना या इसी तरह का और कोई कार्य करवाना, इस अधिनियम के अधीन अपराध है।

- नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत अपराध विचार योग्य और हस्तक्षेपनीय होते हैं। इसके लिए जेल और जुर्माना दोनों सजाओं का प्रावधान है। पहले अपराध के लिए एक महीने की जेल और 100 रुपये के जुर्माने से लेकर 6 महीने की जेल और 200 रुपये के जुर्माने की संज्ञा हो सकती है। दूसरे अपराध के लिए 6 महीने की जेल और 200 रुपये से लेकर 1 साल की जेल और 500 रुपये का जुर्माना हो सकता है। तीसरे और अधिक बार के अपराधों के लिए 1 वर्ष को जेल और 500 रुपये के जुर्माने से लेकर दो वर्ष की जेल और 1,000 रुपये का जुर्माना हो सकता है। अदालत के द्वारा अपराधों, जिनमें तीन महीने की सजा दी जा सकती है, शीघ्र निपटाने की व्यवस्था है।

(४) <u>आरक्षण लाभ से सम्बद्ध पक्ष एवं न्यायिक प्रक्रिया</u>-

<u>नौकरियों में आरक्षण</u>-

दलितों के लिए नौकरियों में आरक्षण देने की सरकार की नीति निःसन्देह दलितों के कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका का योगदान किया है। इस नीति के अनुसार सभी सरकारी नौकरियों- सरकारी, सार्वजनिक क्षेत्र, स्वायतशासी निकायों और सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुपात में नौकरियों में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गयी है। राज्यों द्वारा अगर इस नीति को ठीक ढंग से लागू किया जाये तो सामाजिक समरसता की स्थिति में तेजी से सुधार होगा। किन्तु अभी तक राज्यों ने इस नीति के क्रियान्वयन में असन्तोषजनक स्थिति का ही प्रदर्शन किया है। सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में अभी भी अनुसूचित जातियों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पाया है।

आरक्षण की इस सुरक्षा कवच का उपयोग करके भारतीय् नौकरशाही में 50,000/- अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकता है। इस आशा में दलितों में शिक्षा के प्रति रुचि का विकास भी हो रहा है। सरकार की इस नीति का सुखद परिणाम यह भी रहा है कि राष्ट्र निर्माण में दलितों की प्रत्यक्ष भागीदारी भी सुनिश्चित हो पा रही है तथा दलित राष्ट्र के प्रति भावनात्मक लगाव भी महसूस कर रहे हैं।

किन्तु निजीकरण की आँधी ने रोजगार में आरक्षण की नीति को काफी आसान पहुँचा रही है। आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण की नीति से, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के दबाव में, भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थांनों का पूँजी का विनिवेश 49 प्रतिशत तक स्वीकार किया जा चुका है। अब ऐसी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों का स्वामित्व ज्वाइण्ट वेंचर कम्पनीज के रूप में रूपान्तरित हो रहीं हैं। परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों को ऐसी कम्पनियों में निम्न स्तरीय पदों को छोड़कर, आरक्षण के लाभ से वंचित होना पड़ रहा है। इस प्रकार सरकार की विनिवेश की नीति आरक्षण की नीति के खिलाफ है। इसी प्रकार वैश्वीकरण के प्रभाव में अन्य अनेक सार्वजनिक क्षेत्र की सेवाएँ निजी क्षेत्रों में बदलती जा रही हैं जिससे अनुसूचित जातियों की इस सुविधा में कमी आ रही है।

सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव-

जातिगत दुराग्रह से पीड़ित होना अनुसूचित जातियों के जीवन की आन्तरिक विशेषता है। अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग के रिपोर्ट के अनुसार भारत में दलितों के प्रति जातिगत उत्पीड़न की मात्रा में वृद्धि हो रही है। इस समस्या के निदान हेतु भारतीय संविधान में अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 23 का प्रावधान किया गया है। इन उपबन्धों को और प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित अन्य उपाय भी किये गये हैं:-

(1) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 जो संशोधित होकर नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम 1955 हो गया है।

(2) अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति भेदभाव के रोकथाम का अधिनियम 1989

(3) बन्धुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976

अनुसूचित जाति महिलाओं की राजनीतिक स्थिति-

भारत में महिलाएँ कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत प्रतिनिधत्व करती है तथा 80 प्रतिशत गाँवों में निवास करती हैं। अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ घरेलू एवं घर-गृहस्थी का जीवनयापन कर रही हैं उनमें से कुछ जीवनयापन के लिए आर्थिक कार्यकलापों से जुड़ी हुई हैं। 60 वर्षों की स्वतन्त्रता के बावजूद भी अभी भी ग्रामीण महिलाएँ इस लायक नहीं हो पाई हैं कि वे कोई विशेषीकृत व्यवस्था अपना सकें। राजनीतिक भागीदारी के सन्दर्भ भी भारतीय सामाजिक संरचना, अनुसूचित जाति महिलाओं के लिए नकारात्मक भूमिका का निर्वहन करता है। सामाजिक संरचना इन महिलाओं को लैंगिक श्रम विभाजन करके घरेलू कार्यों तक ही सीमित रखा है।

जेहन[7] ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति महिलाएँ बड़ी संख्या में मतदान में भाग लेती हैं किन्तु सक्रिय राजनीति में उनका योगदान नहीं के बराबर है। कौशिक के अनुसार मताधिकार अनुसूचित जाति महिलाओं के लिए राजनीतिक समानता पाने का प्रारम्भिक केन्द्र है किन्तु अभी आगे उन्हें और प्रयास करना होगा।

मोहन्ती[8] ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि अनुसूचित जाति महिलाओं के राजनीतिक समानता के लिए सामाजिक संरचना में सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन लाकर उन्हें इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे प्रभावी रूप से पंचायती राज व्यवस्था में अपना योगदान दे सकें तथा पारिवारिक मूल्यों के साथ समायोजन भी कर सकें।

उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के तीन गाँवों के अपने अध्ययन के आधार पर सुधापाल ने आगाह किया है कि यद्यपि आरक्षण, महिला साक्षरता में वृद्धि, स्वतन्त्र मतदान का अधिकार तथा परिवार एवं समाज में उनकी परिवर्तित प्रस्थिति में विकास हो रहा है किन्तु अभी भी वे अपने परिवार के पुरुष सदस्यों के लिए नाम मात्र की ही प्रतिनिधि हैं।

(५) नारी उत्पीड़न सम्बन्धी संवेदनशील सन्दर्भ तथा न्यायिक व्यवस्था-

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा को देखकर ज्ञात की जा सकती है। स्त्रियाँ ही संतति की परम्परा के निर्वाह में मुख्य भूमिका निभाती रही हैं। फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आज के आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक स्त्रियाँ उपेक्षित ही रही हैं। भारतीय समाज में प्रचलित रुढ़ियाँ, मान्यताएँ, आडम्बर और बेड़ियाँ स्त्रियों को जकड़े हुए हैं कि वे समाज के दबे-कुचले वर्ग का एक बड़ा भाग होकर रह गयीं हैं। आज के आधुनिक कहे जाने वाले समाज में स्त्रियों को बाजार की वस्तु बना दिया गया है। समाज अपने नैतिक मूल्यों, गरिमा, भद्रता और शिष्टता से कोसों दूर चला गया है। बाल विवाह, सती-प्रथा, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, वधुओं को दहेज के लिए जलाकर मार डालना और अन्य अनेक अपराध सरकारी प्रयासों के बावजूद इस समाज की जड़ों में गहरे तक जम चुके हैं। केवल सरकारी प्रयासों या कानून से तब तक किसी समस्या का हल नहीं निकल सकता जब तक कि हम स्वयं सक्रिय और जागरूक न हों। सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा के लिए दहेज हत्या, बलात्कार, सती प्रथा और घरेलू हिंसा जैसे विभिन्न प्रकार के कानून पारित किये हैं।

घरेलू हिंसा संरक्षण कानून-

घरेलू हिंसा पर कानून बनाने के बारे में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने "घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 बनाया है; जो कि महिलाओं

को सभी प्रकार की घरेलू हिंसा से संरक्षण प्रदान करने वाला व्यापक कानून है। यह कानून 26.10.2006 से लागू हो चुका है और अपने घरों में हिंसा का सामना करने वाली महिलाओं को इसमें तत्काल राहत प्रदान की जाती है। अधिनियम में उल्लखित प्रावधानों के अनुसार, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2006 भी अधिसूचित किया जा चुका है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005-

घरेलू हिंसा से महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए *'घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005'* नाम के अधिनियम को 14 सितम्बर 2005 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। इसे 26 अक्टूबर 2006 से लागू किया गया। इस अधिनियम के द्वारा महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाने के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये हैं।

- इस कानून में घरेलू हिंसा की जो परिभाषा दी गई है उसमें वास्तविक दुर्व्यवहार, अथवा शारीरिक, यौन, शाब्दिक, आर्थिक दुर्व्यवहार की धमकी और भावनात्मक उत्पीड़न को शामिल किया गया है। महिला की गरिमा को ठेस पहुँचाना, बच्चे न होने अथवा पुत्र के जन्म न लेने पर ताने मारना और अपमानित करना भी इस कानून के प्रावधानों में शामिल है।
- इसमें पीड़ित महिला के ससुराल अथवा संयुक्त परिवार में रहने का अधिकार का उपबन्ध भी किया गया है चाहे ऐसे घर या परिवार पर महिला का स्वामित्व हो अथवा न हो। यदि प्रतिवादी महिला नहीं है तो उसे घर छोड़ने के लिए जिसमें शिकायतकर्ता महिला के साथ रह रहा है अथवा उसके जैसा वैकल्पिक आवास महिला को देने या उसके लिए ऐसा घर किराये पर लेने का निर्देश इस अधिनियम के अन्तर्गत दिया जा सकता है।

- इस अधिनियम में दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति को घरेलू हिंसा या अन्य किसी विनिर्दिष्ट कार्य में सहायता करने अथवा ऐसा कोई कार्य करने, कार्य-स्थल अथवा ऐसी किसी अन्य स्थान जहाँ सामान्यतः पीड़ित महिला का आना जाना हो ऐसे स्थान पर प्रवेश करने, पीड़ित महिला से बात करने का प्रयास करने, दोनों पक्षों द्वारा प्रयुक्त की जा रही परिसम्पत्तियों पर केवल अपना अधिकार स्थापित करने से भी रोकने का प्रावधान इस अधिनियम में है। इस प्रकार पीड़ित महिला को आने-जाने की स्वतन्त्रता तथा परिसम्पत्तियों पर अधिकार इस अधिनियम में देने का प्रयास किया गया है।
- इस अधिनियम में उन महिलाओं को शामिल किया गया है जिनका दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति से कोई सम्बन्ध है अथवा रहा है। उन मामलों को भी इस कानून में जगह मिली है जिनमें दुर्व्यवहार करने वाला व्यक्ति तथा पीड़ित महिला दोनों के बीच समरक्तता, विवाह जैसे प्रसंग अथवा दत्तकगृहण पर आधारित कोई रिश्ता है जो एक ही परिवार में साथ रह रहे हैं। बहनें, विधवाएँ, माताएँ, एकल महिलाएँ तथा दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के साथ रहने वाली महिलायें भी कानूनी संरक्षण की हकदार होंगी। आज बड़े-बड़े महानगरों में पुरुष और स्त्री विवाह से पूर्व भी साथ-साथ रहते हैं इन महिलाओं और युवतियों को भी इस कानून के तहत संरक्षण प्रदान किया गया है। इस कानून के अन्तर्गत पीड़ित महिला को राहत प्रदान करने के लिए जारी किये जाने वाले आदेशों में संरक्षण आदेश, आवास आदेश, आर्थिक राहत सम्बन्धी आदेश, अभिरक्षा तथा क्षतिपूर्ति आदेश सम्मिलित हैं।

महिलाओं को अन्य सुविधाएं जैसे- चिकित्सा जाँच, कानूनी सहायता, सुरक्षित आश्रय आदि प्राप्त कराने के लिए सेवा प्रदाताओं के रूप में संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति का प्रबन्ध किया गया है साथ ही गैर-सरकारी

संगठनों की सहायता एवं विशिष्ट सहयोग भी कानून को लागू करवाने में सहायक होंगे। कानून में एक वर्ष की कैद और 20 हजार रुपये जुर्माना या दोनों का प्रावधान है।

यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण विधेयक, 2005-

महिलाओं को कार्य-स्थल पर यौन-उत्पीड़न से संरक्षण का अधिकार प्रदान करने के लिए सुप्रतिष्ठित एवं अपेक्षित अनुभव रखने वाले संगठनों के परामर्श से तैयार किया गया है। इस कानून में संगठित, असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्रों और यहाँ तक कि उन प्रतिष्ठानों में कार्यरत महिलाओं को भी शामिल किया जायेगा, जिनमें औपचारिक नियोक्ता कर्मचारी सम्बन्ध मौजूद नहीं है। जैसे कि छात्राएं और कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न की समस्या का निवारण एवं समाधान करने के नियोक्ता के दायित्वों के विषय में भी इस अधिनियम में स्पष्ट उपबन्ध किये गये हैं।

महिलाओं का यौन-शोषण एक सार्वभौमिक समस्या है। महिलाओं के प्रति हिंसा को प्रायः बलात्कार, दहेज-हत्या या मारपीट के दायरे में ही देखा जाता है परन्तु उनके साथ होने वाले यौन-उत्पीड़न को देखकर भी अनदेखा किया जाता है। यौन उत्पीड़न का अर्थ है- महिलाओं को बुरी नजर से देखना, उसके प्रति फब्तियों कसना, भद्दे गाना गाना, उन्हें डराने के लिए उनका पीछा करना, उसके अंगों को उसकी मर्जी के खिलाफ छूना, एवं अनचाहे शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए दबाव डालना आदि।

आज प्रायः सभी वर्ग की महिलाएँ उत्पीड़न का शिकार हो रही हैं चाहे वे मजदूरन हों, पढ़ी लिखी कामकाजी महिलाएं हो, छात्रा हों यहाँ तक कि स्वयं वकील, पुलिस एवं प्रशासनिक अधिकारी हों, मजिस्ट्रेट हो या सैन्य अधिकारी हों वह भी यौन उत्पीड़न से नहीं बच पा रही हैं। किन्तु पारिवारिक मर्यादा एवं महिलाओं के स्वयं की प्रतिष्ठा की आड़ में सामान्यतः महिला उत्पीड़न की घटनाओं को सार्वजनिक किये जाने से लोग बचते हैं।

स्वभावतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपने जन्म, पालन-पोषण, सुरक्षा, शिक्षा स्वास्थ्य और अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे दूसरों की सहायता और सहयोग पर निर्भर रहना पड़ता है। परिवार का आन्तरिक विन्यास, सदस्यों के रिश्तों एवं व्यवहारों से संरचित होता है किन्तु निहित हितों अथवा विघटनकारी व्यवहारों से पारिवारिक सदस्यों के अन्तर्सम्बन्धों में सामंजस्य कम हो जाता है। एकांकी क्रियाएँ एवं व्यवहार दूसरे को आहत करती हैं। पारिवारिक सौहार्द एवं समायोजन को हिंसा क्षतिग्रस्त कर देती है। इस तथ्य के आलोक में प्रतिदर्श में शामिल उत्तरदाताओं से घरेलू हिंसा की प्रवृति के बारे में उनकी प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया। जिसके प्रत्युत्तर में प्राप्त तथ्यों का तालिका संख्या 6.4 में प्रदर्शित किया गय है।

तालिका संख्या-६.४

घरेलू हिंसा की प्रवृति (हिंसात्मक स्वजन युग्म)

प्रवृति (स्वजन युग्म)	आवृत्ति	प्रतिशत
पति-पत्नी	126	42.00
भाई-भाई	63	21.00
सास-बहू	114	38.00
पिता-पुत्र	24	08.00
चाचा-भतीजा	36	12.00
देवरानी-जेठानी	108	36.00
ननद-भौजाई	72	24.00
माता-पुत्र	18	06.00
देवर-भाभी	27	09.00

नोटः खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश 42 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं की दृष्टि में घरेलू हिंसा का स्वरूप पति-पत्नी के बीच में पाया जाता है। तत्पश्चात् 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं की दृष्टि में सास-बहू के बीच, 36 प्रतिशत के अनुसार देवरानी-जेठानी, 24 प्रतिशत के अनुसार ननद-भौजाई के बीच घरेलू हिंसा की प्रकृति दृष्टिगत होती है। भाई-भाई के बीच घरेलू हिंसा की प्रकृति 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है। इसी क्रमें 9 प्रतिशत के अनुसार देवर-भाभी के बीच मात्र 8 प्रतिशत ही पिता-पुत्र के बीच तथा सबसे कम 6 प्रतिशत माता-पुत्र के बीच घरेलू हिंसा की घटनाएं पायी जाती हैं। तथ्यों के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि ज्यादातर घटनाएँ रक्त सम्बन्धियों की अपेक्षा विवाह मूलक सम्बन्धियों में ही पाया जाता है। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई के बीच हिंसा की मात्रा प्रतिदर्श में कम ही पायी गयी है। यह तथ्य भी उजागर हो रहा है कि पुरुष के सापेक्ष महिलाएँ ही हिंसाग्रस्त ज्यादा होती हैं। महिलाओं की मजबूरी है कि उनके साथ हिंसात्मक व्यवहार होने पर भी वे आर्थिक पराश्रयता या सामाजिक कारणों/बच्चों के प्रति अपने दायित्वों तथा सामाजिक निन्दा से बचने आदि कारणों से सब कुछ शान्त-भाव से सहती रहती हैं। अनुसूचित जाति महिलाएँ इसे अपना भाग्य तथा पूर्व कर्मों का प्रतिफल समझकर स्वीकार करती हैं।

घरेलू हिंसा की प्रवृत्ति जानने के उपरान्त अनुसूचित जाति महिलाओं से इसके लिए उत्तरदायी कारणों के प्रति राय माँगी गयी जिसके प्रति उत्तर में प्राप्त तथ्यों को तालिका संख्या 6.5 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-६.५
घरेलू हिंसा के लिए उत्तरदायी कारक

कारक	आवृत्ति	प्रतिशत
सम्पत्ति के बँटवारे में खराब	174	58.00
परिवार में संवाद का अभाव	54	18.00
दायित्वों की उपेक्षा	72	24.00
सदस्यों में नशाखोरी	111	37.00
अनैतिक सम्बन्ध	66	22.00
दहेज-प्रथा	72	24.00
पारिवारिक भूमिकाओं में असंतुलन	96	32.00
अन्य	24	08.00

नोटः खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं के अनुसार घरेलू हिंसा का प्रमुख कारण सम्पत्ति के बँटवारे में आपसी टकराव ही है। 37 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार परिवार के पुरुष सदस्यों- पति, जेठ, ससुर आदि के नशाखोरी की आदतें घरेलू हिंसा का कारण हैं। 24-24 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार परिवार के सदस्यों के दायित्वों की उपेक्षा तथा दहेज में प्राप्त एवं प्राप्त होने चाहिए सम्बन्धी विवादों के कारण घरेलू हिंसा की घटनाएँ घटित होती हैं। 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं की नजर में पारिवारिक भूमिकाओं में असन्तुलन घरेलू हिंसा के लिए उत्तरदायी है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कामकाजी महिलाओं का दोहरा दायित्व बोझ का निर्वहन करना पड़ता है। किसी एक की समय से पूर्ति न हो पाना चिड़चिड़ापन, कुण्ठा परिणामस्वरूप घरेलू हिंसा को बढ़ावा देने लगता है। 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पारिवारिक सदस्यों के अन्य व्यक्तियों के साथ अनैतिक सम्बन्धों को घरेलू हिंसा के लिए उत्तरदायी स्वीकार किया है 18 प्रतिशत के

अनुसार परिवार में संवाद का अभाव तथा 8 प्रतिशत ने अन्य कारणों को उत्तरदायी ठहराया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि घरेलू हिंसा के लिए सम्पत्ति का बँटवारा, दायित्वों की उपेक्षा, नशाखोरी की प्रवृत्ति, दहेज सम्बन्धी समस्याएँ तथा पारिवारिक भूमिकाओं में असन्तुलन एवं अनैतिक सम्बन्धों की घटनाएँ ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं।

प्रत्येक कारण किसी न किसी परिणाम को प्रतिफलित करता है। इस निमित्त अनुसंधानकर्त्ता ने उत्तरदाताओं से घरेलू हिंसा के कारणों का परिवार पर, व्यक्ति पर या स्वयं उनके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा? अभी प्रतिक्रिया प्राप्त करने का प्रयास किया गया। प्राप्त तथ्यों को सारणी संख्या 6.6 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-६.६

घरेलू हिंसा का परिणाम

परिणाम	आवृत्ति	प्रतिशत
पारिवारिक अलगाव	216	72.00
सम्पत्ति का बँटवारा	168	56.00
अन्तर्सम्बन्धों में कटुता	210	70.00
नातेदारी सम्बन्धों का टूटना	126	42.00
पारिवारिक प्रतिष्ठा की सामाजिक हानि	120	40.00
बच्चों के समाजीकरण पर प्रभाव	96	32.00

नोटः खुला प्रश्न होने के कारण योग नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं ने घरेलू हिंसा के परिणामों के प्रति जो प्रतिक्रिया दी है उसके अनुसार घरेलू हिंसा किसी एक पिरवार का ही जनक नहीं है अपितु इसके बहुआयामी प्रभाव हैं। फिर भी, अधिकांश 72

प्रतिशत अनुसूचित जाति महिला उत्तरदाताओं के अनुसार पारिवारिक अलगाव प्रमुख दुष्परिणाम है, 70 प्रतिशत ने अन्तर्सम्बन्धों की कटुता, 56 प्रतिशत ने सम्पत्ति के बँटवारे को प्रतिफल के रूप में स्वीकार किया है। 42 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार घरेलू हिंसा का परिणाम नातेदारी सम्बन्धों का टूटना तथा 40 प्रतिशत के अनुसार पारिवारिक प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचती है। 32 प्रतिशत महिलाओं ने बच्चों के समाजीकरण पर इसके प्रभाव को स्वीकार किया है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि घरेलू हिंसा के कारण वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक एवं सामुदायिक विघटन को बढ़ावा मिलता है।

(६) धार्मिक जीवन की जटिलताएँ एवं वैधानिक सुविधाएँ-

धार्मिक दृष्टिकोण से अनुसूचित जाति महिलाओं को अनेक निर्योग्यताएँ से पीड़ित होना पड़ा है। कुछ वर्षों पूर्व तक इन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। कानून द्वारा आज इस निर्योग्यता को दूर कर दिया गया है फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी यह निर्योग्यता कुछ अंशों में दिखाई देती है।

इसके अतिरिक्त धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने और धार्मिक संस्कारों में भाग लेने के सम्बन्ध में भी निर्योग्यताएँ भी यहाँ तक कि इनके धार्मिक कार्यों को संपादित करने के लिए कोई भी पुरोहित तैयार नहीं होता था। अनुसूचित जातियों को धार्मिक उपदेश सुनने पर प्रतिबन्ध था तथा ये लोग शमशान घाटों में अपने मुर्दों को जला भी नहीं सकते थे।

उपर्युक्त निर्योग्यताओं में मन्दिर में प्रवेश या देवी देवताओं के पूजन सम्बन्धी निर्योयता ही सबसे प्रमुख हैं, क्योंकि धर्म के माध्यम से नैतिक उन्नति ही नहीं होती अपितु सामाजिक एकता की भावना भी बढ़ती है। परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों का नैतिक स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा नहीं हो सका।

धार्मिक जीवन की जटिलताओं के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति महिलाओं से जब उनकी प्रतिक्रिया माँगी गई तब उन्होंने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की उन तथ्यों को सम्मिलित कर तालिका संख्या 6.7 में प्रदर्शित किया गया।

तालिका संख्या-६.७

धार्मिक जीवन की जटिलताओं के प्रति उत्तरदाताओं के विचार

विचार	हाँ		नहीं		योग	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
पूजा-पाठ में भाग लेने का अधिकार	174	58	126	42	300	100
व्रत-तीज त्यौहारों को मनाने का अधिकार	138	46	162	54	300	100
मन्दिरों आदि में प्रवेश का अधिकार	126	42	144	48	300	100
पुरोहित की सेवाओं को प्राप्त करने का अधिकार	108	36	192	64	300	100

नोटः खुला प्रश्न होने के कारण कुल उत्तरदाता = 300 सम्पूर्ण योग सम्भव नहीं।

(७) नारी जीवन की जटिलताओं के निवारण में सामाजिक विधानों की प्रासंगिकता-

21 वीं शताब्दी भारतीय महिलाओं के विकास का प्रत्यक्ष दर्शक बन रहा है। सरकार तथा महिला आन्दोलनों के सशक्त प्रयासों का प्रतिफल है कि आज महिलाएँ काफी तेजी से आगे बढ़ रही हैं। इस प्रक्रिया में महिलाओं में क्रियाशील और आधारभूत नेतृत्व का उद्‌भव हो रहा है। यदि इस प्रक्रिया को ठीक ढंग से संचालित किया जाये तो ऐसी महिला नेतृत्व सामाजिक रूपान्तरण में अपना महती योगदान दे सकने में सक्षम हो सकती हैं। ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि महिलाओं में सामाजिक न्याय का अधिकार, स्त्री-पुरुष समानता तथा महिला सशक्तिकरण के आधार में विकास हो रहा है।

जनगणना 2001 के औपबन्धिक परिवारों के अनुसार- महिला साक्षरता 1971 में 22 प्रतिशत से 2001 में 54 प्रतिशत तक बढ़ी है। जो कि मानव संसाधन के क्रियाशीलता और विकास का सूचक है। परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने वाला है। इसी प्रकार 73 वां तथा 74 वां संविधान संशोधन जो कि पंचायतों तथा म्यूनिस्पल कारर्पोरेशन के चुनाव से सम्बन्धित है, के द्वारा महिलाओं में चुनाव में भाग लेने तथा मतदाता के रूप में उनकी गतिशीलता में वृद्धि की है। महिला शिक्षा में विकास तथा पंचायती राज में भागीदारी दोनों ही सूचकों ने समाज को प्रकार्यात्मक ढंग से न सिर्फ प्रभावित कर रही हैं अपितु जाति समुदाय एवं धार्मिक समूहों में परिवर्तन भी ला रही हैं। घरेलू हिंसा में जो वृद्धि हो रही है उसे भी शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी आदि के माध्यम से परिवार, समुदाय तथा राज्य के सापेक्ष कम करने में मदद मिल रही है।

महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान करने के लिए भारतीय संविधान ने राज्यों को यह शक्ति प्रदत्त की है कि वे ऐसा कानून बना सकते हैं जो कि महिलाओं के पक्ष में हो जिससे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक न्याय में वृद्धि कर सकें। इसके लिए राज्यों ने अनेक ऐसे उपबन्धों का प्रावधान किया है किससे महिलाओं के उत्पीड़न, उनके प्रति भेदभाव को कम करने में सफलता मिल रही है। फिर भी अभी भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हमारा संविधान तथा मौजूदा कानून महिलाओं के हितों की रक्षा कर पाने में सक्षम नहीं हो पा रहा है, ऐसे क्षेत्रों/कानूनों की समीक्षा एवं उसमें संशोधन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। विशेषकर घरेलू हिंसा, कामकाजी महिलाओं का शोषण, महिलाओं के विरुद्ध किये जाने वाले अपराध आदि से सम्बन्धित कानूनों की समीक्षा की जा रही है। राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रयासों से इसमें काफी सफलता मिल रही है।

वर्तमान में महिला आयोग निम्नलिखित कानूनों में संशोधन हेतु सार्थक प्रयास किया है-

(1) मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रिगनेन्सी एक्ट, 1971

(2) चाइल्ड मैरिज रिस्ट्रेंट एक्ट, 1929

(3) फेमिली कोर्ट एक्ट, 1984

(4) फारेन मैरिज एक्ट, 1969

(5) गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट, 1890

(6) इण्डियन सक्शेसन एक्ट, 1925

(7) मैरिड वूमेनस प्रापर्टी एक्ट, 1874

(8) हिन्दू मैरिज एक्ट, 1959

(9) प्रीन्नटट डाइग्नोस्टिक टेक्नीक्स (रेग्यूलेशन एण्ड प्रिवेंसन ऑफ मिसयूज) एक्ट, 1994

(10) मिनिमम वेज एक्ट, 1948 आदि।

अनुसूचित जाति महिलाओं के हितों की सुरक्षा के उपाय-

भारत में अनुसूचित जातियाँ अनेक वंचनाओं से ग्रसित हैं, इनकी इन समस्याओं को भारतीय संविधान में ध्यान में रखते हुए इनके लिए अनेक उपायों का उपबन्ध किया है:-

(1) सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सुरक्षा

(2) आर्थिक सुरक्षा

(3) राजनीतिक सुरक्षा

(4) रोजगार की सुरक्षा

अनुसूचित जाति महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति में सुधार के निम्नलिखित उपाय हैं:-

- भारतीय संविधान ने जाति एवं प्रजाति के भेदभाव मूलक प्रवृत्ति को संज्ञान में लिया है।
- अनुच्छेद 15 (धन, प्रजाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद) और अनुच्छेद 17 जाति पर आधारित भेदभाव को प्रतिबन्धित किया है। किन्तु हमारे समाज की प्रमुख संस्थाएँ और संस्कृति उच्च जाति के पक्ष में प्राथमिकताएँ तथा नीतियाँ निर्धारित करती हैं। संविधान में प्रदत्त अधिकार और सुरक्षा की गारन्टी को ये संस्थाएँ निष्प्रभावी बनाने का काम करती हैं।

भारत सरकार ने इसे ध्यान में रखते हुए दो महत्वपूर्ण कानून पास किये हैः-

- पी.सी.आर.ए. नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम 1955 और अनुसूचित जाति/जनजाति भेदभाव निवारण अधिनियम 1989 अनुसूचित नीतियाँ को भी ऊँची जातियों की तरह जीने का अधिकार प्रदान किया है। अनुसूचित जातियों के लिए सामाजिक न्याय प्राप्त करने का ये अधिनियम सकारात्मक प्रयास है।
- कानून का ठीक ढंग से अनुपालन न हो पाने के कारण अनुसूचित जाति महिलायें इन कानूनों का अपने हितों के लिए उपयोग नहीं कर पा रही हैं। प्रायः ऐसी महिलाएँ इन कानूनों से अनभिज्ञ भी हैं। इनकी उपेक्षा विरोधियाँ पुलिस तथा न्यायालयों का दमन करने की प्रवृति को बढ़ावा देती हैं।

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के निवारण हेतु विधेयक-

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की रोकथाम पर एक विधेयक तैयार किया गया जिससे विशाखा मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मानकों और दिशा-निर्देशों का पालन किया जा सके। प्रस्तावित नये कानूनों में संगठित, असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्रों यहाँ तक कि उन प्रतिष्ठानों में कार्यरत महिलाओं को भी शामिल किया जायेगा जिनमें औपचारिक नियोग्य-कर्मचारी सम्बन्ध मौजूद नहीं है।

केन्द्रीय सरकार ने 20 मार्च 2001 को राष्ट्रीय महिला शक्ति-सम्पन्नता नीति को अंगीकार किया। इस नीति का मुख्य उद्देश्य महिलाओं की उन्नति, विकास और सशक्तिकरण करना और महिलाओं के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करना तथा सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों और क्रिया-कलापों में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना है।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ-

दण्ड प्रक्रिया संहिता 2005 में संशोधनोपरांत यह व्यवस्थित किया गया है कि किसी भी महिला को सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व गिरफ्तार नहीं किया जायेगा और अपवादिक मामलों में महिला पुलिस अधिकारी लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रथम श्रेणी के सम्बन्धित न्यायिक मजिस्ट्रेट जिसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत अपराध घटित हुआ है या गिरफ्तारी की जानी है, की पूर्वानुमति लेकर संदिग्ध महिला को गिरफ्तार करेगी।

इस अधिनियम के अन्तर्गत उन महिलाओं को शामिल किया गया है, जिनका दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति से कोई सम्बन्ध है अथवा रहा है और उन मामलों को भी इस अधिनियम के अन्तर्गत शामिल किया गया है, जिनमें दुर्व्यवहार करने वाला व्यक्ति तथा पीड़ित महिला, दोनों पक्षों के बीच समरक्ता, विवाह, विवाह जैसे प्रसंग अथवा दत्तक गृहण पर आधारित कोई रिश्ता है तथा एक ही परिवार में एक साथ रहे हैं। इनके अतिरिक्त संयुक्त परिवार के रूप में एक साथ रहने वाले परिजनों के साथ सम्बन्धों को भी इस अधिनियम में शामिल किया गया है। यहाँ तक कि बहनें, विधवाएँ, माताएँ, एकल महिलाएँ तथा दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के साथ रहने वाली महिलाएँ भी प्रस्तावित विधान के अन्तर्गत कानूनी संरक्षण प्राप्त करने की हकदार हैं। यह अधिनियम पत्नी या किसी पुरुष के साथ विवाह सदृश सम्बन्ध स्थापित करके रहने वाली महिलाओं को तो अपने पति अथवा पुरुष साथी के किसी सम्बन्धी के

विरुद्ध शिकायत दर्ज कराने का अधिकार प्रदान करता है, किन्तु पति या पुरुष साथी की किसी महिला सम्बन्धी को पत्नी या पुरुष से विवाह सदृश सम्बन्ध रखने वाली महिला के विरुद्ध शिकायत दर्ज करने का अधिकार प्रदान नहीं करता है।

- इस अधिनियम में 'घरेलू हिंसा' की परिभाषा में वास्तविक दुर्व्यवहार अथवा शारीरिक, यौन, शाब्दिक, भावनात्मक अथवा आर्थिक दुर्व्यवहार की धमकी को शामिल किया गया है। महिला अथवा उसके सम्बन्धियों से दहेज की गैर-कानूनी मांग करके किये जाने वाले उत्पीड़न को भी इस परिभाषा में शामिल किया जायेगा।
- इसमें पीड़ित महिला के संयुक्त परिवार में रहने के अधिकार का उपबन्ध भी किया गया है, चाहे ऐसे घर अथवा परिवार पर महिला का स्वामित्व या अधिकार हो अथवा नहीं। यदि प्रतिवादी महिला नहीं है, तो उसे वह घर छोड़ने के लिए, जिसमें वह शिकायतकर्त्ता महिला के साथ रह रहा है, अथवा उसके जैसा वैकल्पिक आवास भी महिला को देने या उसके लिए ऐसा घर किराये पर लेने का निर्देश इस अधिनियम के अन्तर्गत दिया जा सकता है।
- इस अधिनियम के अन्तर्गत पीड़ित महिला को राहत प्रदान करने के लिए जारी किये जाने वाले आदेशों में संरक्षण आदेश, आवास आदेश, आर्थिक राहत सम्बन्धी आदेश, अभिरक्षा आदेश तथा क्षतिपूर्ति आदेश शामिल है।
- इस अधिनियम में दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति को घरेलू हिंसा या अन्य किसी विनिर्दिष्ट कार्य में सहायता करने अथवा ऐसा कोई अन्य कार्य करने, कार्यस्थल अथवा ऐसे किसी अन्य स्थान, जहाँ सामान्यतया पीड़ित महिला का आना-जाना हो, में प्रवेश करने, पीड़ित महिला से बात करने का प्रयास करने, दोनों पक्षों द्वारा प्रयुक्त की जा रही परिसम्पत्तियों पर केवल अपना अधिकार स्थापित

करने तथा पीड़ित महिला या घरेलू हिंसा के मामले में उसकी सहायता करने वाले उसके सम्बन्धियों या अन्य किसी व्यक्ति के साथ हिंसा कराने से रोकने के लिए दण्डाधिकारी को पीड़ित महिला के पक्ष में संरक्षण आदेश पारित करने का अधिकार दिया गया है।

- इस अधिनियम में पीड़ित महिलाओं का उनकी चिकित्सा जाँच, कानूनी-सहायता, सुरक्षित आश्रय आदि प्राप्त करने के सम्बन्ध में सहायता प्रदान करने हेतु सेवा प्रदाताओं के रूप में संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति तथा गैर-सरकारी संगठनों की मान्यता एवं सहभागिता का उपबन्ध किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) **प्रमुख सामाजिक विधानः** सती प्रथा निवारण अधिनियम, 1829, 1927

हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम, 1856

बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1872, 1929, 1978

विशेष विवाह अधिनियम, 1872, 1923, 1954

हिन्दू-विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1955, 1976

दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम, 1961, 1984, 1986

(2) **जेहन** : अनुसूचित जाति महिलाएं और मतदान

(3) **मोहन्ती** : अनुसूचित जाति महिलाओं के राजनीतिक, आर्थिक परिवेश में परिवर्तन

अध्याय - 7

सामान्यीकरण

- अध्ययन के निष्कर्ष
- कतिपय सुझाव
- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

<u>सामान्यीकरण-</u>

<u>निष्कर्ष और सुझाव</u>

प्रस्तुत अध्ययन अनुसूचित जाति की महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (जनपद झाँसी के विशेष सन्दर्भ में) पर आयोजित किया गया है इस अध्ययन को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में प्रस्तावना, द्वितीय अध्याय में पद्धति शास्त्र, तृतीय अध्याय में इकाईयों की परिचयात्मक पृष्ठभूमि, चतुर्थ अध्याय में महिलाओं के पारिवारिक समायोजन की प्रकृति, पंचम् अध्याय में महिलाओं की समस्यायें एवं परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था का विवरण दिया गया है षष्ठम् अध्याय में नारी जीवन की जटिलतायें एवं सागाजिक विधान को प्रस्तुत किया गया है।

समाज में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है महिलाओं की शक्ति का समुचित उपयोग करने एवं सम्माननीय स्थान देने पर वे राष्ट्र के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित कर सकती हैं। यह सच है कि महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में जोड़े बिना किसी समाज राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

यद्यपि महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार धीमी गति से हुआ है जिसका मुख्य कारण सामाजिक विधानों का सीमित प्रभाव रहा है। भारत का दीर्घ कालीन इतिहास रहा है कि अन्य कई देशों से भी अधिक दीर्घ काल जिसमें नारी के प्रति व्यवहार में

प्रशंसा और श्रृद्धा से तिरस्कार और दुर्व्यवहार तक अस्थिरता दर्ज है। वैदिक साहित्य के प्रमाण बताते हैं कि भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति, व उत्तराधिकार के अधिकार प्राप्त थे। पुरुषों के समान स्वतन्त्रता और शील तथा सम्मान की रक्षा करना एक महान कर्त्तव्य माना जाता था। वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी। मध्य युग में पितृ सत्तात्मक और पुरुष प्रधान समाज में स्त्री-पुरुष में असमानता स्वीकृत हो गयी थी। लिंग भेद के आधार पर स्त्री-पुरुष की भूमिका निर्णित थी और स्त्रियों की स्थिति घर की चार दीवारी के अन्दर तक ही थी। ये युग महिलाओं की स्थिति की दृष्टि से एक कलंक का युग माना जाता है। अंग्रेजों के समय में शिक्षा सुधार के प्रयास पश्चिमी उदारवाद, मानवतावाद और लोकतन्त्र स्वतन्त्रता समानता की वजह एवं स्वतन्त्रता के बाद महिलाओं के अधिकारों को देने के लिए भारतीय समाज सुधारकों के योगदान एवं प्रभाव से महिलाओं के स्थान एवं भूमिका में परिवर्तन आया है। स्वाधीनता आन्दोलन से उत्साहित और समाज सुधारकों के समर्पित प्रयासों द्वारा विगत सौ वर्षों ने पिछली कई शताब्दियों से महिलाओं के विरुद्ध की गयी गलतियों के सुधार हेतु प्रयत्नशील पुनर्रुत्थानशील भारत को देखा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में अनेक उच्च मेधावी महिलाओं के साथ-साथ सामान्य महिलाओं ने भी भाग लिया और आन्दोलन की अगली कतार में रहीं। भारतीय इतिहास के इस दौर के अनुभवों से पश्चिमी शिक्षा और उदार आदर्शों की बढ़ती जानकारी महिलाओं के भेदभाव के सभी रूपों को समाप्त करने की जरूरत पर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान दिया गया लेकिन हमारे देश के भीतर सामाजिक चेतना में वृद्धि हुई है। विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है कि महिला पुरुष की तुलना में अपने अधिकारों के सन्दर्भ में सदैव उपेक्षित रहीं हैं। इसलिए प्रत्येक समाज में महिलाओं के साथ शोषण, अन्याय और अत्याचार होता रहा है। इस शोषण के पीछे उनमें व्याप्त अशिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक

जागरूकता की कमी पुरुष प्रधान मानसिकता, रुढ़िवादिता तथा आर्थिक आधार पर पुरुषों पर निर्भर रहना आदि कारण उत्तरदायी रहे हैं।

1970 से शुरू होने वाले दशक में यूरोप और अमेरिका की अनेक जागरूक महिलाओं ने अनुभव किया कि महिलाओं में मताधिकार आन्दोलनों और उनकी स्थिति के प्रति उदारवादी एवं समाजवादी दोनों विचार परम्पराओं में इतनी सजगता के बावजूद भी स्थिति पश्चिमी संस्कृति के भीतर महिलाओं की पराधीनता का अन्त करने की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हो पायी तभी महिला अधिकारों के लिए एक नये आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। वहाँ आधुनिकता, तार्किकता, प्रजातन्त्र, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एवं तकनीकी शिक्षा का प्रभाव है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं ने अपने अधिकारों की माँग की। इन सब अधिकारों के लिए विभिन्न महिला संगठनों का निर्माण हुआ वे संगठन महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, बलात्कार, शोषण, हिंसा, दहेज हत्या, परिवार में मारपीट, कामकाजी महिलाओं की समस्याओं, वैश्यावृत्ति, निम्न जाति की महिलाओं का शोषण सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने के लिए विरोध करना।

नारी शोषण या नारी समस्या मूलतः पुरुष प्रधान समाज और समाज की दोहरी मानसिकता से ही जनित हैं। पुरुष समाज में सदैव से एक बुर्जुवा की तरह शोषक और महिलायें सदैव से ही सर्वहारा की तरह शोषित रहीं हैं। किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में महिलाओं की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती हैं। महिलाओं की स्थिति ही वह सपना है जो समाज की दशा और दिशा को स्पष्ट कर देता है। सन् 2001 में भारत की कुल जनसंख्या 1,02,70,15,247 हो गई, जिसमें 53,12,77,078 पुरुष तथा 49,57,38,169 महिलाएं जो कुल आबादी का 48.27 प्रतिशत देश के इतने बड़े भाग का जीवन यदि शोषित, उपेक्षित और दोयम दर्जे का हो तो स्पष्ट है कि ऐसे समाज के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

महिलाओं को इन सब बातों के होते हुए भी और सामाजिक न्याय स्वयं ही प्राप्त करना होगा। समाज में ऐसा वातावरण पैदा करना होगा, जहाँ कि आम आदमी की सोच में बदलाव आये इसके लिए महिलाओं के अन्दर एक शक्तिशाली गति और वृहत सामाजिक चेतना जागृत करनी होगी। जिससे वह सहभागी सहकारिता के आधार पर आगे एक नये क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम बने और आने वाले समय में मानव का भविष्य स्वर्णीम बन सके।

प्रायः यह देखा गया है कि विवाहोपरान्त एक नववधू जब अपनी ससुराल की जिन्दगी में प्रवेश करती है तो उसके समक्ष एक नया एवं बदलता हुआ परिवेश मिलता है जिसके साथ उसे तादात्म्य स्थापित करना होता है। परिवार में वृद्धा जो स्वयं कभी बहू के रूप में इस घर में आयी थी अपने अतीत की खट्टी-मीठी स्मृतियाँ लिए हुए अपनी अधिसत्ता, प्रभुत्व प्रभाव एवं शासन तन्त्र स्थापित करने का प्रयास करती हैं। पुरातन एवं अद्यतन मूल्यों की संघर्षात्मक स्थितियाँ प्रायः सास-बहू के मध्य तनाव, संघर्ष, अविश्वास, ईर्ष्या, घृणा जैसी अनेक प्रवृत्तियों एवं स्थितियों को जन्म देकर पारिवारिक व्यवस्था को अव्यवस्थित बनाने का प्रयास करती हैं।. शक्ति परीक्षण अस्मिता, प्रतिष्ठा, प्रभुत्व, प्रक्षेपण, स्वाभिमान का वर्चस्व अमूल्य बनाये रखने की परस्पर प्रतिस्पर्धायें अन्तः वृद्धा की सामाजिक समायोजन को सही बनाने का प्रयास करती हैं। इसलिए महिलाओं की सामाजिक स्थितियों का अध्ययन करने हेतु मैंने प्रस्तुत अध्ययन विषय का चयन किया है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुआयामी इसे निश्चित शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता। जो आज समाज के लिए सही है वह समाज की बदलती हुई परिस्थिति में गलत भी हो सकती है। यह एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है। सामाजिक न्याय का अर्थ समाज में सभी व्यक्तियों की समानता के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए समान अवसर उपलब्ध कराना। सामाजिक न्याय की प्राप्ति स्वतन्त्रता, समानता

और बन्धुत्व के समन्वय से ही प्राप्त की जा सकती है। सामाजिक न्याय व्यक्ति को विश्वास प्रदान करता है। ये सामाजिक न्याय महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा, अधिकारों के प्रति उदासीनता, आर्थिक निर्भरता, तकनीकी अज्ञानता, स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता, सामाजिक कुरीतियों एवं पुरुषों का महिलाओं पर प्रभुत्व आदि समस्याओं को दूर करना सामाजिक न्याय का आवश्यक कार्य है।

इस सामाजिक न्याय ने महिलाओं को समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, सामर्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करना। महिलाओं में विभिन्न आयामों की जानकारी देकर चेतना, जागृति कर उन्हें शिक्षित करना अति आवश्यक है। विभिन्न संस्कृतियों, लोकाचारों, धर्मों, अर्थव्यवस्थाओं, पर्यावरणों, प्रशासन तन्त्रों, परम्पराओं एवं बच्चों के लालन-पालन में महिलाओं की उचित भागीदारी निश्चित करना। महिलाओं को सशक्त बनाने की दृष्टि से विशिष्ट कानून और अधिनियम बनाये हैं। जिनका उद्देश्य तमाम बातों के साथ-साथ सामाजिक भेदभाव से उन्हें संरक्षण प्रदान करना और समान अवसर प्रदान करना है। महिलाओं के उत्थान के लिए कई योजनायें चलाई गयीं जिसमें महिला समृद्धि योजना, इन्दिरा महिला योजना, महिलाओं हेतु राष्ट्रीय आयोग का गठन, राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना तथा संविधान का 73वां और 74वां संशोधन, जिसके अन्तर्गत महिलाओं के लिए पंचायतों व नगर निकायों के चुनावों में सभी श्रेणियों में सभी स्तरों पर एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

यद्यपि बुन्देलखण्ड में महिला प्रतिनिधि अन्धविश्वास पर्दाप्रथा तथा रूढ़िवादी विचार धाराओं के कारण सक्रिय नहीं हो पाती थी जिसके मूल में मुख्यतः अशिक्षा एवं जागरूकता का अभाव ही रहा है। परन्तु धीरे-धीरे शिक्षा के बढ़ते हुए स्तर पर जागरूकता के कारण इस स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है जो महिलाओं के लिए विकास में अपनी सशक्त भागीदारी सुनिश्चित कराने में महत्वपूर्ण होगा। आज

महिलाएं पंचायतों में आरक्षण के तहत समाज विकास में प्रत्येक स्तर पर अपनी भागीदारी करके समाज का सर्वांगीण विकास कर रही हैं।

द्वितीय अध्याय पद्धतिशास्त्र का है। भारत में महिलाओं की प्रस्थिति से सम्बन्धित अध्ययन की प्रचुरता रही है। महिलाओं की प्रत्येक स्थितियों पर समाज-वैज्ञानिकों ने समय-समय पर अध्ययन किये हैं। सरकार भी महिलाओं की उन्नति एवं जागरूकता सम्बन्धी अध्ययनों एवं योजनाओं को समय-समय पर प्रतिपादित एवं क्रियान्वित कर रही हैं। अनुसूचित जाति महिलायें समाज विकास में योगदान देकर भागीदारी सुनिश्चित करा रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में महिलाओं की समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन नहीं हुआ। यह अध्ययन जागरूकता और महिलाओं की भागीदारी निश्चित करेगा। यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड अति पिछड़ा एवं अशिक्षित ऐसे क्षेत्र की महिलाओं में क्या शिक्षा के प्रति जागरूकता व्याप्त हुई? क्या उनके अन्दर समाजिक चेतना का उदय हो पाया? पंचायत में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है। तो क्या इस क्षेत्र की महिलायें आरक्षण के विषय में जागरूक हैं और आरक्षण का लाभ ले पा रहीं हैं। यह जानने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है। ऐसे क्षेत्र की महिलाओं का सामाजिक विधानों और आर्थिक जीवन में सुदृढ़ता के विषय में जानकारी कराना है तो इसका अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अध्ययन को सफल बनाने हेतु अनुसंधान प्रविधियों का सहारा लिया गया। जिसके अन्तर्गत अध्ययन की दृष्टि से झाँसी जनपद के अन्तर्गत विकास खण्ड मोंठ, चिरगांव, बामौर, गुरसहाय, बंगरा, मऊरानीपुर, बबीना तथा बड़ागांव जिनमें 764 आबाद ग्राम तथा 185 गैर आबाद ग्राम हैं। इस जनपद की कुल जनसंख्या का अनुसूचित जाति महिलाओं की भागीदारी 2,28,357 प्रतिशत है। 300 इकाईयों का अध्ययन करने के लिए चुना गया है। सूचनाओं के संकलन हेतु व्यक्तिगत साक्षात्कार

का सहारा लिया गया है। इस साक्षात्कार अनुसूची में सौ प्रश्नों को इस प्रकार रखा गया जिससे अनुसूचित जाति महिलाओं की मनोवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ, जागरूकता और विकास में सशक्त भागीदारी करने सम्बन्धी चेतना को जाना जा सके। वर्तमान अध्ययन में प्रतिदर्श के चुनाव के लिए **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति** का चयन किया गया है। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति प्रतिचयन की वह पद्धति है जिसमें शोधकर्ता अपनी योजना या उद्देश्य के अनुसार समग्र से इकाइयों का चयन करके प्रतिदर्श का निर्माण कर लेता है। इस पद्धति के माध्यम से झाँसी जनपद के आठ विकास खण्डों से प्रति विकास खण्ड से 25 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। इस प्रकार 200 उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र से तथा 100 उत्तरदाताओं का चयन झाँसी नगर निगम क्षेत्र से किया गया है। कुल 300 उत्तरदाताओं पर यह अध्ययन आधारित है। प्रतिदर्श का चुनाव इस दृष्टि से किया गया है कि जिससे ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो सके। इकाईयों के चयन में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि वे सभी आयु स्तर, शैक्षिक स्तर, एवं आर्थिक स्तर पर समग्र का प्रतिनिधित्व करें।

तृतीय अध्याय में उत्तरदाताओं की परिचयात्मक पृष्ठभूमि का विवरण दिया गया है। अनुसूचित जाति महिलाओं के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे परिवार, विवाह, जाति संस्तरण आर्थिक एवं शैक्षणिक आदि को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें महिलायें निवास करती हैं।

झाँसी जनपद के विकास खण्डों में समाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार जाति है यहाँ जाति व्यवस्था का स्वरूप काफी दृढ़ है। और अनुसूचित जाति के लोगों में कोरी, चमार, धोबी, बाल्मीकि बसोर, जाटव, पासी, खटिक, नट, मुसहर आदि प्रमुख हैं। यहाँ महिलाओं की सामाजिक स्थिति जातिगत स्थिति पर भिन्न-भिन्न है।

इन अनुसूचित जाति महिलाओं की पारिवारिक संरचना, आयु संरचना, जातीय स्थिति, धार्मिक स्थिति, व्यावसायिक स्थिति, आवासीय दशा, शैक्षिक स्तर, आर्थिक

स्थिति, राजनीतिक स्थिति आदि का परिचयात्मक विवरण जानने का प्रयास किया गया है। आयु के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित सर्वाधिक 39.9 प्रतिशत उत्तरदाता 31 से 40 वर्ष की हैं जबकि सबसे कम 12.0 प्रतिशत महिलायें 50 वर्ष से अधिक की हैं। जातीय संरचना के आँकड़ों के अनुसार अनुसूचित जाति-समूह के अन्तर्गत आने वाली जातियों में कोरी जाति के उत्तरदाताओं का प्रतिशत सर्वाधिक 21 प्रतिशत है। इसके बाद क्रमशः चमार तथा धोबी उत्तरदाताओं का प्रतिदर्श में 16.0 एवं 15.0 प्रतिशत प्रतिनिधित्व है। नट एवं मुसहर जैसी जातियों का प्रतिनिधित्व सबसे कम 1.3 प्रतिशत तथा 3.3 प्रतिशत है।

धर्म सम्बन्धी आँकड़ों से पता चलता है कि 93.0 प्रतिशत उत्तरदाता हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। बौद्ध एवं सिक्ख धर्म से सम्बन्धित मात्र 7 प्रतिशत उत्तरदाता ही हैं। पारिवारिक पृष्ठभूमि के अवलोकन से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 63.3 प्रतिशत महिला उत्तरदाता एकांकी परिवार में रहती हैं। जहाँ तक उत्तरदाताओं के परिवार के कुल सदस्यों की संख्या का प्रश्न है प्रतिदर्श के विश्लेषण से पता चलता कि सर्वाधिक 47.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में 6 से 10 सदस्य रहते हैं। इन उत्तरदाताओं के बच्चों की संख्या के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं को तीन या अध्कि बच्चे हैं। इसी प्रकार वैवाहिक स्थिति के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि सर्वाधिक 87 प्रतिशत उत्तरदाता वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहीं हैं जबकि मात्र 4 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित श्रेणी में हैं। आवासीय पृष्ठभूमि के आँकड़ों से पता चलता है कि प्रतिदर्श में शामिल 66.7 प्रतिशत उत्तरदाता ग्रामीण पृष्ठभूमि की हैं तथा उनमें 51.3 प्रतिशत कच्चे मकानों में ही रहती हैं। 31.4 प्रतिशत उत्तरदाता झोंपड़ी में ही अपना जीवन निर्वाह करती हैं।

शैक्षिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्तरदाताओं की अपनी शैक्षिक स्थिति तथा उनके पति या पिता की भी शैक्षिक स्थित को जानने का प्रयास किया गया

है। प्रतिदर्श में शामिल सर्वाधिक 57.0 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित वर्ग की हैं। शिक्षितों में सर्वाधिक 19.3 प्रतिशत की शैक्षिक स्तर प्राइमरी ही है यद्यपि की 6 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक तथा स्नातकोत्तर भी हैं। इसी प्रकार उनके पति/पिता की शैक्षिक स्थिति के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि 46.4 प्रतिशत पति/पिता अशिक्षित ही हैं। 16.3 प्रतिशत स्नातक/स्नातकोत्तर जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त हैं।

उत्तरदाताओं के व्यवसाय के अन्तर्गत 77.7 प्रतिशत प्रतिनिधित्व मजदूर वर्ग की है जबकि 11.3 प्रतिशत उत्तरदाता प्राइवेट अथवा सरकारी नौकरी भी करती हैं। जहाँ तक उत्तरदाताओं के पारिवारिक मासिक आय का प्रश्न है तो सबसे अधिक 57.7 प्रतिशत की आय 2000 रु. तक ही है। उच्च आय समूह का प्रतिनिधित्व करने वाली उत्तरदाताओं का प्रतिशत बहुत ही अल्प लगभग 5.7 प्रतिशत ही है। राजनीतिक संरचना के अन्तर्गत प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश 66.0 अनुसूचित जाति उत्तरदाता राजनीति में रुचि लेने लगी हैं मात्र 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ही अपनी राजनीति के प्रति अरुचि प्रदर्शित की है।

प्रस्तुत अध्याय में झाँसी जनपद की अनुसूचित जाति महिलाओं के पारिवारिक समायोजन की प्रकृति, पारिवारिक सदस्यों के अन्तः सम्बन्ध, नातेदारी सम्बन्धों की प्रकृति एवं विवाह परिवार एवं विवाह सम्बन्धी विशिष्ट मान्यताएं महिलाओं की अधिसत्ता एवं न्यायिक प्रभाव, महिलाओं की जैवकीय इच्छाएं/आवश्यकताएं, गृहस्थी के निष्पादन में महिलाओं की भूमिका, आर्थिक, नियंत्रण एवं प्रबन्धन में महिलाओं की स्थिति, पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता एवं कार्य आदि का विवरण जानने का प्रयास किया गया है। सन्तानोंके भावनात्मक सम्बद्धता को देखने से पता चलता है कि प्रदर्श में सम्मिलित सर्वाधिक 73 प्रतिशत उत्तरदाता बच्चे अलग रहते हैं जबकि सबसे कम 27 प्रतिशत बच्चों के साथ रहते हैं। जहाँ तक नातेदारी के सम्बन्धों की बात है सबसे अधिक 84 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि हमारे सम्बन्ध

नाते-रिश्तेदारों से स्थायी बने हुए हैं। और 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने व्यक्त किया कि नाते-रिश्तेदारों से हमारे सम्बन्ध समाप्त हो गये हैं। परिवार और विवाह सम्बन्धी विशिष्ट मान्यताओं से सम्बन्धित पारिवारिक व्यवस्था के निवारण से पता चलता है कि सबसे अधिक 23 प्रतिशत उत्तरदाता स्वयं, पति एवं अविवाहित एक ही परिवार में रहते हैं। और 18 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वयं एवं पति के साथ एक परिवार में रहने की बात कही है। 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि स्वयं, पति, अविवाहित/विवाहित बच्चे एक साथ रहते हैं। सबसे कम 7 प्रतिशत उत्तरदाता अकेले ही परिवार में रहती हैं।

अनुसूचित जाति महिलाओं की अधिसत्ता एवं न्यायिक प्रभाव को जानने में पता चलता है कि अधिसत्ता एवं प्रभाव की स्थिति के सम्बन्ध में सुदृढ़ अधिसत्ता एवं प्रभाव 52 प्रतिशत उत्तरदाताओं के हाथ में है तथा कमजोर अधिसत्ता एवं प्रभाव 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं के हाथ है। और 18 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि वे अधिसत्ता एवं प्रभावहीन है। महिलाओं की जैवकीय इच्छाएं/आवश्यकताओं के बारे में जानकारी करने पर पता चला है कि जैविक इच्छाओं/आवश्यकताओं से सम्बन्धित 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनकी पूर्ति घर में ही हो जाती है। और 44 प्रतिशत ने बताया कि जैविक इच्छाओं/आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है।

गृहस्थी के निष्पादन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करने पर पता चला कि 82 प्रतिशत महिलायें गृहस्थी के रख-रखाव सम्बन्धी उत्तरदायित्व को निभाती है। 72 प्रतिशत भोजन सम्बन्धी उत्तरदायित्व, 66 प्रतिशत स्वच्छता सम्बन्धी उत्तरदायित्व, 58 प्रतिशत शिशुओं की देखरेख सम्बन्धी उत्तरदायित्व, 56 युवा पीढ़ी को प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व और 52 प्रतिशत बुजुर्ग पीढ़ी की सेवा को उत्तरदायी ठहराते हैं।

पारिवारिक आर्थिक नियंत्रण एवं प्रबन्धन के विवरण के सन्दर्भ में 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके विवाहित बच्चे तथा उनकी पत्नियों के हाथ में है। 14 प्रतिशत वित्तीय नियंत्रण एवं प्रबन्धन परिवार की वृद्ध पुरुष व महिला के हाथों में है। 9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि परिवार के वृद्ध पुरुष के हाथ में होती है। और शेष 6 प्रतिशत परिवार की वृद्ध महिला के हाथ में होती है। 82 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि पारिवारिक निर्णय पुरुष ही करते हैं और 18 प्रतिशत निर्णय लेने का कोई स्थान नहीं है। महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने के सम्बन्ध में 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने विचार व्यक्त किया कि स्वयं, पति एवं बच्चें निर्णय लेते हैं और 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि स्वयं तथा पति के द्वारा ही निर्णय लिया जाता है। 19 प्रतिशत समस्त परिवारीजन निर्णय लेते हैं।

महिलाओं की समस्याएं एवं परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था में रीति-रिवाजों को मानने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार इस प्रकार हैं। 78 प्रतिशत महिलायें रीति-रिवाजों को मानती हैं। जबकि 12 प्रतिशत रीति-रिवाजों को नहीं मनाती हैं। और 10 प्रतिशत तटस्थ रूप में उत्तर दिया। आर्थिक समस्याओं के प्रति अनुसूचित जाति की महिलाओं के विचार जानने पर ज्ञात हुआ कि 64 प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक समस्याओं का अनुभव करती हैं और 36 प्रतिशत महिलायें आर्थिक समस्याओं का अनुभव नहीं करती हैं। अधिसत्ता एवं प्रभुत्व के सम्बन्ध में 40 प्रतिशत महिलाओं ने परिजनों की राय से निर्णय लेते हैं। 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि विवाहित बच्चों के हाथ में परिवार की अधिसत्ता एवं प्रभुत्व कायम है। 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने विचार व्यक्त किया कि परिस्थिति के अनुसार ढल ज़ाते हैं। महिला प्रस्थिति के सम्बन्ध में 88 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने बताया कि पुरुषों की प्रस्थिति ऊँची है। 9 प्रतिशत पुरुषों एवं महिलाओं की प्रस्थिति समान है। जबकि 3 प्रतिशत महिला प्रस्थिति है। सामाजिक विधानों की जानकरी के प्रति उत्तरदाताओं के

में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुपात में नौकरियों में आरक्षण की सुविधा प्रदान की जा रही है।

नारी उत्पीड़न के सम्बन्ध में 42 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया पति के द्वारा उत्पीड़न किया जाता है। 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया उनका उत्पीड़न सास के द्वारा किया जाता है। 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने देवरानी और जेठानी के द्वारा उत्पीड़न किये जाने की बात कही है, 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि ननद के द्वारा उत्पीड़न किया जाता है और 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि चाचा-भतीजा के द्वारा उत्पीड़ित किया जाता है। बहुत कम उत्पीड़त केवल 6 प्रतिशत पुत्र द्वारा किया गया है।

धार्मिक दृष्टिकोण से अनुसूचित जाति महिलाओं को अनेक निर्योग्यताओं से पीड़ित होना पड़ा है। कुछ वर्षों पूर्व तक इन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। कानून द्वारा आज इस निर्योग्यता को दूर कर दिया गया है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी यह निर्योग्यता कुछ अंशों में दिखाई देती है। धार्मिक जीवन की जटिलताओं के प्रति उत्तरदाताओं के विचार इस प्रकार हैं। 58 प्रतिशत उत्तरदाता पूजा-पाठ में भाग लेने का अधिकार मानती हैं, 46 प्रतिशत उत्तरदाता व्रत-तीज त्योहारों को मनाने की बात कही है। जिसमें किसी प्रकार की मनाही नहीं है। 42 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि मन्दिरों में प्रवेश वर्जित नहीं है। और 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न कराने के लिए पुरोहित की सेवायें ली जाती हैं।

प्राप्त तथ्यों को संकलित कर तालिकाबद्ध किया और पुनः विश्लेषित किया विश्लेषणात्मक शोध प्ररचना का आश्रय लिया गया है। उपर्युक्त अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष उल्लिखित किये जा रहे हैं:-

(1) अधिकांश अनुसूचित जाति महिलायें एकाकी परिवारों की हैं।

(2) चयनित अनुसूचित जाति महिलायें निजी आवासों एवं किराये के मकानों में रहती हैं।

(3) अधिकांश परिवारों में एक या दो पीढ़ी के ही लोग रहते हैं।

(4) प्रायः महिलाओं के परिवारों का मुख्य व्यवसाय निजी काम, निजी व्यापार एवं नौकरी ही है।

(5) लगभग 39.30 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलायें 31-40 वर्ष की आयु की हैं जो मानक आयु मानी जाती है।

(6) अनुसूचित जाति महिला की पारिवारिक एवं सामाजिक, आर्थिक दशाओं का विश्लेषण करना है।

(7) अनुसूचित जाति महिलाओं द्वारा अपने दैनिक जीवन में विभिन्न सामाजिक न्यायिक क्रिया-कलापों के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं को उजागर करना है।

(8) प्रतिचयित अनुसूचित जाति महिलायें अशिक्षित ज्यादा हैं वे शिक्षित भी हैं तथा उच्च्व शिक्षा प्राप्त भी हैं।

(9) अधिकांश परिवारों में शाकाहारी भोजन ही पसन्द किया जाता है।

(10) लगभग 63.33 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलायें केन्द्रीय परिवार व्यवस्था एवं शेष 36.67 प्रतिशत अनुसूचित जति महिलायें एकाकी व मिश्रित परिवार व्यवस्था में जीवन-यापन कर रही हैं।

(11) परस्पर एक-दूसरे की सहायता करना; विवाह आदि से सम्बन्धित उचित सुझाव देना आदि अलग रहने वाले परिवारीजनों से स्थायित्व के सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

(12) कुछ अनुसूचित जाति बुजुर्ग महिलाओं को छोड़कर अधिकांश अनुसूचित जाति बुजुर्ग परिवार के महत्वपूर्ण मामलों में निर्णायक सदस्य की भूमिका का निर्वाह

करती हैं अर्थात् परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता उनके पास सुरक्षित है क्योंकि वे जनतांत्रिक तरीके से ही निर्णय लेने में विश्वास रखती हैं।

(13) अधिकांश अनुसूचित जाति बुजुर्ग महिलाओं द्वारा लिये गये पारिवारिक निर्णयों को यथावत स्वीकार न करके आधुनिक सन्दर्भों के अनुकूल पारिवारीजनों द्वारा किये गये कार्यों को उनमें यथा सम्भव आंशिक संशोधन करके स्वीकार कर लिया जाता है अर्थात् अन्तिम स्वीकृति युवा पीढ़ी के अनुसार ही होती है जो परम्परागत पारिवारिक अधिसत्ता के परिवर्तन का प्रतीक है।

(14) परिवार अपना प्रभुत्व और अधिसत्ता बनाये रखने तथा इज्जत से शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए महिलायें परम्परावादी मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को भी पारिवारिक स्तर पर स्वीकार कर लेती हैं।

(15) अधिकांश अनुसूचित जाति महिलायें गृहस्थी के रख-रखाव, स्वच्छता-सफाई युवा पीढ़ी को प्रशिक्षण, शिशुओं की देखभाल तथा भोजन निर्माण व वितरण सम्बन्धी गृहस्थी के विविध दायित्वों का निर्वाह करती है।

(16) विभिन्न पारिवारिक व वैवाहिक समस्याओं में परामर्श लेकर एक दूसरे के यहाँ आ-जाकर दूसरों के द्वारा उनके सम्पर्क में रहकर तीज-त्योहारों पर नियमित रूप से बुलाकर तथा विभिन्न अवसरों पर (आवश्यकता पड़ने पर) एक-दूसरे की सहायता करके जैसी एक-दूसरे की सहायता करके जैसी तकनीकों के द्वारा बुजुर्ग महिलायें नाते-रिश्तेदारों से यह सम्बन्ध बनाने में सहायता मिलती है।

उपरोक्त निष्कर्ष इस तथ्य का संकेत करते हैं कि अनुसूचित जाति महिलायें स्वस्थ समायोजन प्रभाव एवं अधिसत्ता बनाये रखने के लिए युवा पीढ़ी की भावनाओं का आदर करते हुए परिस्थितियों से यथासम्भव सामंजस्य स्थापित करना ही अत्यधिक प्रासंगिक है।

सुझाव-

प्रस्तुत अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जाति महिलाओं में समस्याओं के निदान में प्रयुक्त परम्परागत सामाजिक न्यायिक व्यवस्था एवं वैधानिक प्रावधानों की प्रासंगिकता के सम्बन्ध में कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं:-

कानून लागू करने वाले अधिकारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है साथ-साथ शोषित महिला के माता-पिता के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। घरेलू हिंसा के मामलों में (पत्नी को पीटना, परिवार सदस्यों द्वारा यौन अपराध करना, बहू को आत्महत्या के लिए बाध्य करना) जब हम अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं तब प्रश्न उठता है कि माता-पिता को भी अपनी पुत्रियों की दुःखी दशा के लिए दोषी क्यों न ठहराया जाये? ये अपनी पुत्रियों के लिए ऐसे वर क्यों तलाशते हैं जिनके लिए उन्हें अपने जीवन की संचित पूँजी खर्च करनी पड़ती है या रूपया कर्ज लेना पड़ता है? वे अपनी पुत्रियों का विवाह दहेज-लोभी परिवारों में क्यों करते हैं? जब उन्हें अपनी पुत्रियों को ससुराल वालों की यातनाओं का पता लगाता है तब वे उन्हें उनकी ससुराल से वापस क्यों नहीं लाते हैं? वे सामाजिक कलंक के विषय में चिंतित क्यों रहते हैं और अपनी पुत्रियों को उनकी ससुराल में क्यों भेज देते हैं जबकि उनके पति या सास-ससुर आदि उन्हें सताते हैं? वे एक बुरी शादी के कानूनी पक्ष की खातिर अपनी पुत्रियों का बलिदान क्यों करते हैं?

एक प्रश्न और है कि लड़कियाँ दबाव के आगे क्यों झुकती हैं? वे यह क्यों नहीं समझती कि ऐसी शादी से जहाँ धन ही सब कुछ है, तलाक अच्छा है? वे ऐसे विवाह बन्धन से मुक्त होकर अपने पैरों पर क्यों नहीं खड़ी होती? वे क्यों नहीं समझती कि आत्म-हत्या करके वे अपने बच्चों के लिए समस्यायें खड़ी करती हैं और अपनी बहनों तथा माँ बाप के लिए संवेगात्मक संकट पैदा करती हैं। जीवन का अन्तिम लक्ष्य विवाह नहीं किन्तु प्रसन्नता है।

हमारे सांस्कृतिक वातावरण में हिंसा को सहन करना इतना गहरा बैठा है कि न केवल अनपढ़, कम शिक्षित और आर्थिक रूप से निर्भर स्त्रियाँ बल्कि कुलीन, उच्च शिक्षित व आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर स्त्रियाँ भी कानूनी या पुलिस संरक्षण नहीं लेती हैं। हमारे समाज में महिलाओं की दुर्दशा को नियंत्रित करने के उपाय खोजते समय तथा स्त्री निर्व्यक्तिकरण के संकट से निपटने के लिए विचार करते समय उपरोक्त तथ्यों को ध्यान देना आवश्यक है। इस दिशा में पाँच उपायों पर हमारा ध्यान जाता है:-

(1) स्त्रियों के प्रति अपने परम्परागत दृष्टिकोण को बदलने के लिए पुरुषों में जागरूकता पैदा करना;

(2) महिला स्वैच्छिक संगठनों को मजबूत करना;

(3) महिलाओं के लिए प्रशिक्षण एवं शैक्षिक कार्यक्रमों पर ध्यान देना;

(4) महिलाओं के हॉस्टल खोलना;

(5) अपराधिक न्याय व्यवस्था को बदलना।

(१) महिलाओं के प्रति पुरुषों के परम्परागत दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता की चेतना पैदा करना-

परिवार के भीत एक स्त्री पुरुष से अपने प्रति ध्यान तथा सहानुभूति चाहती है। वह पूर्ण अधिकार नहीं चाहती; वह चाहती है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में उसकी राय भी ली जाये। उसको व्यंग बातों से पीड़ित करने तथा सताने की जगह वह मृदु वचन तथा प्रोत्साहन भरे शब्दों को बोलने की अपेक्षा करती है और यह महसूस करना चाहती है कि परिवार में उसकी आवश्यकता है। परिवार के बाहर वह अपने निर्णय स्वयं करने की आजादी चाहती है। वह स्वयं सब कुछ नहीं करना चाहती किन्तु वह पुरुष के कन्धे का सहारा सदैव नहीं चाहती।

(२) <u>महिलाओं के स्वैच्छिक संगठनों को मजबूत करना-</u>

अब स्त्रियाँ वह सब कुछ सार्वजनिक रूप से कहना चाहती हैं जो पूर्व में कहने का साहस नहीं करती थीं। एक महिला की आवाज में वजन नहीं होता। यदि वह केवल अपने विचार व्यक्त करती हैं तो उस पर क्रान्तिकारी विचारों का आरोप लगाया जाता है, लेकिन समान विचार वाली महिलाएं एक समूह/संगठन बना लें और महिलाओं के कष्टों के विरुद्ध आवाज उठाएँ तो वे अपने विचारों को मनवा सकती हैं और एक प्रभाव डाल सकती हैं। केवल ऐसे ही संगठनों के माध्यम से स्त्रियाँ उन पुराने प्रतिमानों का प्रतिकार कर सकती हैं जिनमें सुधार की आवश्यकता है। अतः अधिक से अधिक महिला संगठनों को प्रेरित करने की आवश्यकता है। महिलाओं पर अत्याचारों से सम्बद्ध ये संगठन इस प्रकार कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं:-

(1) जन सभाएँ कर सकते है।, प्रदर्शन कर सकते हैं, और दबाव बना सकते हैं।
(2) शोषित महिलाओं की आर्थिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक मदद कर सकते हैं।
(3) विशेष मामलों में परिषदों का गठन कर स्त्रियों में चेतना पैदा कर सकते हैं।
(4) आवश्यकता पड़ने पर पति या ससुराल वालों से समझौते के प्रयत्न कर सकते हैं।
(5) पुलिस पर तुरन्त कार्यवाही के लिए दबाव डाल सकते हैं।
(6) हमलावरों के विरुद्ध, पुलिस अधिकारियों या मजिस्ट्रेट के विरुद्ध याचिका दायर कर सकते हैं तथा मामलों पर पुनः विचार करा सकते हैं।
(7) महिलाओं के प्रति निर्दयी कार्यों या यातनाओं को उजागर करने के लिए पत्रकारों की गोष्ठी बुला सकते हैं।

(३) <u>महिलाओं के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर ध्यान देना-</u>

जब तक स्त्रियाँ आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से अपने पति पर आश्रित रहेंगी तब तक उनको हमारे समाज में उत्पीड़न, अपमान व तिरस्कार सहना

पड़ेगा। केवल शिक्षित (प्रौढ़ शिक्षा कक्षाओं के द्वारा तथा बचपन से ही स्त्री शिक्षा पर बल द्वारा) करके तथा दस्तकारी आदि में शिक्षित करके ही उन्हें आत्म निर्भर बनाया जा सकता है। इसी प्रकार की स्वतन्त्रता हमारी महिलाओं को उनके अर्वाचीन यौन-भूमिका आदर्श से मुक्ति दिला सकती है (परम्परागत सामाजीकरण सिद्धान्त में निहित उपाय), स्वयं को मान्यता दिला सकती है व स्वाग्रही हो सकती है (अर्जित असहायता सिद्धान्त) और अपने पति व ससुराल वालों को उनके साथ दुर्व्यवहार करने से रोक सकती है (आवेशी सिद्धान्त)।

(४) महिला आवास खोल कर-

हिंसा की शिकार हुई महिलाओं को जो इस प्रकार की यातनाओं से बचना चाहती हैं और कोई काम करना चाहती हैं उन्हें नये स्थानों में रहने की जगह खोजने की समस्या का सामना करना पड़ता है। सरकार द्वारा अधिक महिला आवास बनाकर तथा स्वैच्छिक संगठनों व मानव सेवियों आदि द्वारा उन महिलाओं के लिए सिर छुपाने का स्थान प्रदान किया जा सकता है जिनके पास कहीं जाने का स्थान नहीं है। यद्यपि इस ओर लोगों की प्रवृत्ति है लेकिन इस प्रकार के आवास गृह केवल बड़े नगरों में ही हैं। इसी प्रकार के प्रयत्न छोटे नगरों और कस्बों में एक बड़ी सुविधा सिद्ध होंगे.।

(५) अपराधी न्याय व्यवस्था को बदलना-

इस सन्दर्भ में जो सुझाव दिये गये हैं वे हैं:-

(1) न्याय अधिकारियों के दृष्टिकोण और मूल्यों में परिवर्तन,

(2) पुलिस के दृष्टिकोण में परिवर्तन और

(3) पारिवारिक न्यायालयों को बढ़ावा देना।

मजिस्ट्रेटों के परम्परावादी व कठोर दृष्टिकोण में अनुस्थापन कोर्स द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है जहाँ समाज-वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों एवं अनुभविक निष्कर्षों पर बहस की जा सकती है। इससे पूर्व कि जन विश्वास न्यायालयों

से उठ जाये, जैसा कि पुलिस पर से उठ गया है, इससे पूर्व कि न्यायालयों के निर्णय लोगों पर उत्साह भंग तथा हतोत्साहित करने वाला प्रभाव डाले, न्यायाधीशों को कानून के समाजशास्त्रीय व्याख्या पर निर्भर होना पड़ेगा अपेक्षाकृत पूर्वोदाहरण के तथा तकनीकी प्रक्रियाओं को अपनाने पर। इसी प्रकार का परिवर्तन पुलिस के दृष्टिकोण में भी अपेक्षित है।

महिलाओं के निर्व्यक्तिक के आघात को कम करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:-

(1) महिलाओं को कानूनी शिक्षा देना तथा मीडिया, प्रकाशित साहित्य और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से उन्हें (महिलाओं को) उनके अधिकारों के प्रति जागृत करना,

(2) न्यायिक क्रियावाद, अर्थात कानून की शाब्दिक या तकनीकी व्याख्या देने की अपेक्षा उदार एवं रचनात्मक व्याख्या देकर,

(3) न्याय पर लगातार दृष्टिकोण रखकर तथा कानून के प्रभाव को निरन्तर परीक्षण करने से,

(4) सुरक्षा गृहों की देखभाल करके,

(5) निःशुल्क कानूनी सहायता संस्थाओं को मजबूत करके और

(6) परिवार न्यायालयों एवं परिवार कानूनी सलाह सेवाओं की कार्य प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बना कर।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

A.R. Gupta	:	Women in Hindu society. A study of Tradition and transitation D.K. Publishers, New Delhi.
A.W. Oak	:	Study of women in Education . D.K. Publishers New Delhi.
B.K. Paul	:	Problems . and concerns of Indian women D.K. Publishers New Delhi.
B. Panchanna	:	Ideals of Indian women boob 1990 Indian Book and Periodicals.
B.S. Thakur	:	Media Utilization for the development of women and Children, Concept publishing Co, New Delhi.
C.R. Reddy	:	Changing status of education working KK women. A case study D.K. Publishers, New Delhi.
F. Brilliant	:	Women in Power, D.K. Publishers New Delhi.
Ghadially;	:	Women in Indian Society sage Publications, New Delhi.
G.O.S. Kaur	:	Women and Nutrition in India-1989 Indian Books and periodicals New Delhi
Goode & Hatt	:	Methods in social Research, Mogrow Hill Book Co, New Delhi
G.P. Swarnkar	:	Women's Participation in Rural environment D.K. New Publishers, New Delhi
Handwerker	:	Women's power and social Revolution sage Publication, New Delhi
Hansraj	:	Theory and Practice of social research-1984
Hazel D, Lima	:	Women in local Government Concept publishing company, New Delhi

Inderjeet Kaur	:	Status of Hindu women in India, D.K. publishers, New Delhi
Jamuna Nag	:	Social Reform Movements in 19th century India DK Publisher New Delhi
J Rov	:	Non formal Education for Rural Women D.K. publishers New Delhi
Kamla Gupta	:	Social status of Hindu women in Northern India D.K. publishers
K. Mehra	:	Women and Rural Transformation concept publishing Co New Delhi.
Kulwant Gill	:	Hindu women's right to property in India. D.K. publishers, New Delhi.
Leela Dubey	:	Structures and social stategies Women, work and family 1990- I.B.P. New Delhi.
M.P. Singh	:	Women's oppression men Responsible, D.K. Publishers, New Delhi.
N.J. Usha Rao	:	Women in developing society D.K. Publishers, New Delhi
P.K. Pimpley	:	Struggle for status D.K. Publishers, New Delhi
Pratima Kumari	:	Changing Value Among women, D.K. Publishers, New Delhi
Pandey S.	:	Women in Politics-1990 Indian Book, and D.K. Publishers, New Delhi
P. Sharma	:	Family and welfare programme in India Deep and Deep D.K. Publishing, New Delhi
P. Shnita	:	Women's Sub-ordination 1989 Indian Books and Periodicals, New Delhi.
R.B.P. Singh	:	Social walfare for Rural Development, D.K. Publishers, New Delhi.

Ranjan Kumari : Women Headed household in Rural India, D.K. Publishers, New Delhi

R.P. Sinha : Women's Right: my the and reality D.K. Publishers, New Delhi

Sinha : Social Value and Development sage Publication, New Delhi

Usha S.K. : Women and Socialisation A Study of their status and rule power castes of Ahemdabad D.K. Publishers, New Delhi

Usha Talwar : Social Profile of working women D.K. Publishers, New Delhi

Vidyalata : Developing Rural women 1990 Indian Books and Periodical, New Delhi

V.S. Mahajan : Women's Contribution to India's and Social Development Deep and Deep Publication, New Delhi

अमरनाथ : 2007, नारी का मुक्ति संघर्ष, रेमाधव पब्लिकेशन प्रा.लि. नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

जैन, देवकी : इण्डियन वूमेन, पब्लिकेशन डिवीजन, मिन्स्ट्री ऑफ इन्फारमेशन एण्ड बोर्डकास्टिंग गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया, पटियाला हाउस, नई दिल्ली

जी. पालन्थुरई : न्यू पंचायती राज सिस्टम एट वर्क एन एव्यूलेशन, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

कपाड़िया, के.एम. : मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डियन (द्वितीय एडीशन) बॉम्बे ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1958

मुकर्जी, आर.एन. : सामाजिक शोध व सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन, दिल्ली

समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य, विवेक प्रकाशन दिल्ली

नाटाणी, प्रकाशनारायण : मानवाधिकार एवं महिलाएँ, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दल्ली

पाण्डेय, मृणाल : जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, राधाकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली

सप्रू, आर. के. : वूमेन एण्ड डेवलपमेन्ट, आशीष पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली

संतोष यादव : उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति डी. के. प्रकाशन नई दिल्ली

शीला मिश्रा : महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता एवं विविध राजनीतिक दल, डी. के. प्रकाशन नई दिल्ली।

रमा सिंह : शिक्षित हिन्दू महिलाओं एवं धर्म एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, डी.के. प्रकाशन, नई दिल्ली

व्होरा, आशारानी : भारतीय नारीः दशा-दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

समाचार-पत्र

दैनिक जागरण : महिलाएँ व उनकी जिम्मेदारियाँ, मंगलवार, 08.08.2007, पेज-4

अमर उजाला : युवतियाँ नौकरी की बजाय स्वरोजगार पर ध्यान दें, कानुपर शनिवार 05.11.2005

सहारा समय : अपनी अदालत में महिलायें, कानपुर 29.05.2004 पेज-21

❖❖❖❖❖